जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2529

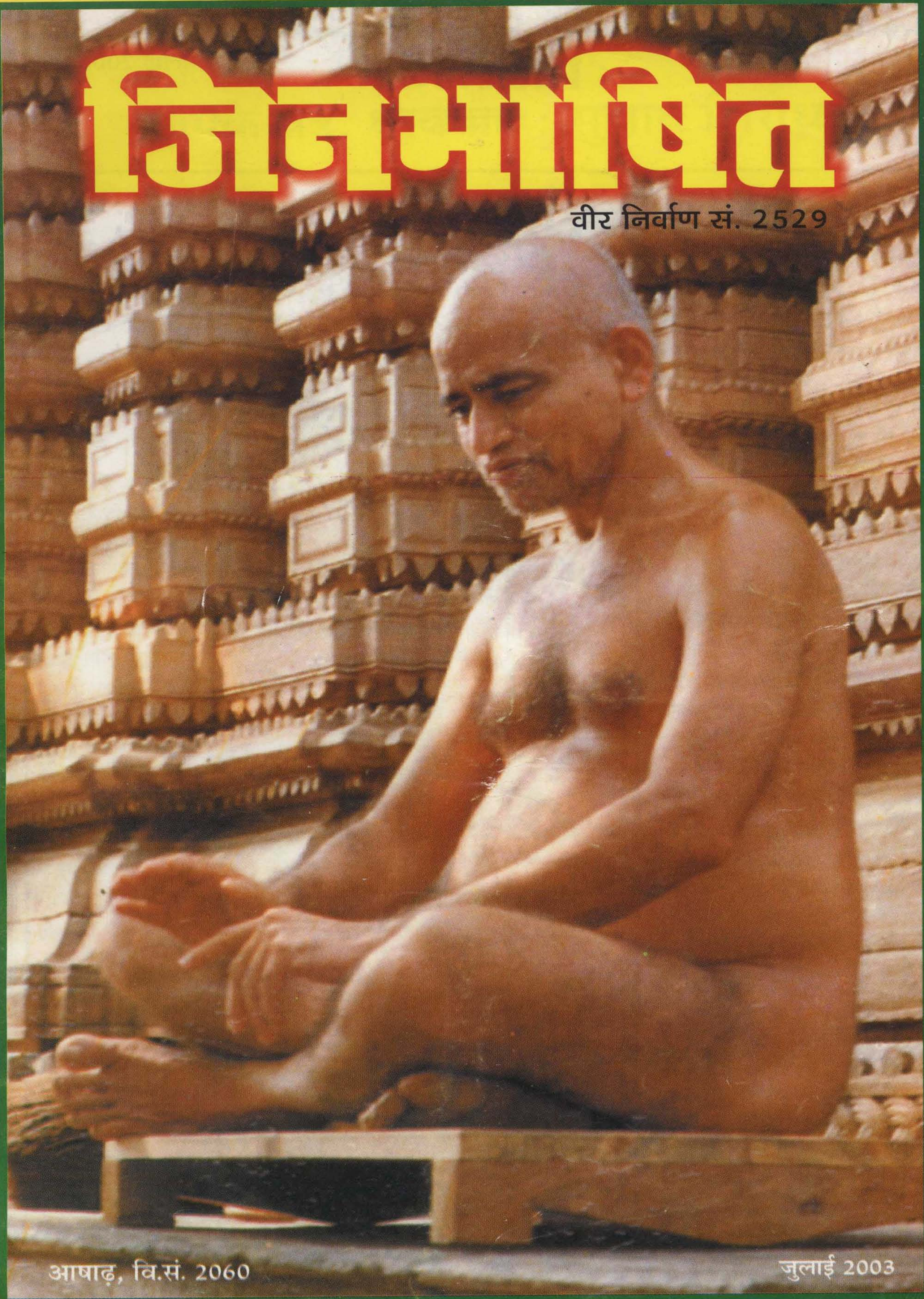

आषाढ़, वि.सं. 2060

जुलाई 2003

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल/588/2003

जिनभाषित

मासिक

जुलाई 2003

वर्ष 2, अङ्क 6

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2151428, 2152278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

◆ **आपके पत्र: धन्यवाद** 1

◆ **सम्पादकीय** : श्री सोली जे. सोराबजी की एक दु:खद टिप्पणी 3

◆ **लेख**

- संत प्रवर आ.विद्यासागर का कृतित्व एवं व्यक्तित्व : डॉ. संकटाप्रसाद मिश्र 5
- श्रमण परम्परा के आदर्श संत जैनाचार्य विद्यासागर जी ...... : डॉ. पी.सी. जैन 7
- धार्मिक अनुष्ठानों में प्रतीकों .... : मुनि श्री चन्द्रसागर जी 9
- जैनदर्शन की मौलिकता : मुनि श्री विशुद्धसागर जी 12
- मानवीय मूल्यों के लिये..... : सौरभ 'सजग' 14
- जिनबिंब प्रतिष्ठा में सूरि मंत्र .... : पं. नाथूलाल जैन शास्त्री 16
- योगसार-प्राभृत में वर्णित .... : पं. रतनलाल बैनाड़ा 18
- सामायिक की प्रासंगिकता : डॉ. श्रेयांसकुमार जैन 20
- श्रावकाचार : सुशीला पाटनी 23
- समकालीन परिवेश में .... : डॉ. शशिप्रभा जैन 24

◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा 26

◆ **प्राकृतिक उपचार**

- सर्दी जुकाम : डॉ. वन्दना जैन 29

◆ **कविता** : योगेन्द्र दिवाकर 8

◆ **बोधकथा**

- गड़रिये की भक्ति : विद्या-कथा कुञ्ज 13
- दयालु न्यायाधीश : ,, 19
- घर में भरत वैरागी : ,, आवरण पृष्ठ 3

◆ **समाचार** 30-32

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके पत्र, धन्यवाद : सुझाव शिरोधार्य

''जिनभाषित'' पत्रिका आपके नामानुरूप व्यवस्थित चल रही है। अतिशीघ्र ही समाज की प्रिय बन गई है, इसका कारण (1) जिज्ञासा- समाधान, इसमें आगमानुकूल समाधान, जिससे विद्वत्जन भी लाभ लेते हैं, यह इसकी विशेषता है। (2)सम्पादकीय, जिसमें निरपेक्ष होकर स्वस्थ आलोचना की जाकर समाज को जागृत किया जाने का प्रयत्न रहता है। (3) इसके लेख, जैसे अप्रैल की पत्रिका में 'जैन दीक्षा का पात्र कौन' बहुत ही सटीक बन पड़ा है। 'अज्ञान निवृत्ति' 'सयुंक्त परिवार का अर्थशास्त्र एवं समाज शास्त्र,' महत्वपूर्ण लेख हैं।

पं. तेजकुमार जैन गंगवाल
10/2, रामगंज (जिन्सी) इन्दौर

पत्रिका के सफलता पूर्ण दो वर्ष पूरे करने पर हार्दिक बधाई। मैं इंदौर से सी.एस. का कोर्स कर रहा हूँ। आपकी पत्रिका का नियमित पाठक तो नहीं हूँ, परंतु जब भी छुट्टियों में अपने गाँव सुलतानगंज (रायसेन) आता हूँ, तो पिछले सारे अंक बड़े ही चाव से पढ़ता हूँ। पत्रिका का आवरण हर अंक का मनमोहक है, कागज और छपाई भी बहुत ही सुंदर है, अक्षरों का यही फोण्ट हमेशा बनाए रखें। पत्रिका को और भी आकर्षक बनाने के लिए मैं यहाँ कुछ सुझाव दे रहा हूँ, आशा है आप उन पर विचार करेंगे-

1. प्रवचन, लेख एवं कविता के साथ प्रवचनकार (आचार्य, मुनि), लेखक एवं कवि का टिकट साइज का स्वच्छ चित्र शीर्षक के साथ ही दायीं ओर छापा जाना चाहिए।

2. प्रवचन, लेख आदि के मुख्यांश को उसके मध्य में एक बाक्स में बड़े फोण्ट में (बोल्ड अक्षरों में) छापा जाना चाहिए।

3. ग्रंथ-समीक्षा के साथ पुस्तक का आवरण चित्र भी प्रकाशित करें।

4. संपादकीय के साथ भी सबसे ऊपर बायीं ओर संपादक महोदय का टिकट साइज़ का फोटो छापा जाये।

5. कुछ और नये स्तंभ शुरू करें, जैसे - बालक जगत, युवा चेतना, विज्ञान और जैन धर्म, जैन इतिहास से, भूले विसरे कवि हमारे (उनकी रचनाएँ,साथ ही उनका थोड़ा जीवन परिचय), आओ प्राकृत सीखें (प्राकृत भाषा को सिखाने के लिए) आदि इसी तरह के अन्य स्तंभ शुरू किये जा सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि सभी स्तंभ हर अंक में छापे जायें, जैसी सामग्री उपलब्ध हो उसी के हिसाब से स्तंभों को स्थान दिया जाये।

6. पत्रिका को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए ले आउट में परिवर्तन किया जा सकता है। डिजाइन के लिए देखें, आउट लुक (हिन्दी), इंडिया टुडे (हिन्दी), दैनिक भास्कर, मधुरिमा, रसरंग आदि।

7. शाकाहार तथा अहिंसा संबंधी समाचारों वाली सामग्री को भी स्थान दिया जाये। (जैसे पत्रिका शाकाहार क्रांति व तीर्थंकर में प्रकाशन होता है)

8. जानकारी में आया है कि ग्लेज्ड पेपर (जिसका प्रयोग पत्रिका के आवरण में होता है) को चिकना करने के लिए अण्डे का इस्तेमाल होता है, यदि यह सही है तो पत्रिका के आवरण के लिए इस कागज का इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए।

9. पत्रिका में चित्रों का नितांत अभाव है। इस कमी को पूरा करें।

10. पाठकों के पत्रों में से विशेष पत्र को बॉक्स में प्रकाशित करें। अन्य पत्रों की विशेष बातों को बोल्ड अक्षरों में छापें।

मेरी कामना है कि ''जिनभाषित'' जैन जगत की सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक प्रसारित पत्रिका बने। पूज्य गुरुदेव विद्यासागर जी जैसे महान् आचार्य का जब आपको आशीर्वाद प्राप्त है तो पत्रिका अपने मिशन को पाने में अवश्य कामयाब रहेगी। जिस तरह भोपाल, जबलपुर में जैनों के लिए एम.बी.ए., आई.ए.एस., आई.पी.एस., पी.एस.सी. आदि के संस्थान खोले गये हैं, उसी तरह अब जैनों को संगीत (गायन, वादन), चित्र कला, खेलों आदि में प्रतिनिधित्व दिलाने के लिए संस्थान स्थापित करने की महती आवश्यकता है। समाज के श्रेष्ठी वर्ग इस ओर ध्यान देंगे, ऐसी आशा है।

प्रवीण कुमार जैन ''विश्वास''
सी.एस. इंटर
सी-117, साँईनाथ कॉलोनी, इंदौर (म.प्र.)

''जिनभाषित'' का अप्रैल अंक मिला, धन्यवाद । अंक की सामग्री विविध आयामी और विचारोत्तेजक है। बधाई ।

मुनिश्री निर्णय सागर जी का आलेख 'कार्यकारण व्यवस्था' का विषय विचारणीय एवं अनिवार्यरूप से ग्रहण करने योग्य है। आपके अनुसार 'विगत 200-250 वर्षों के कुछ शास्त्र स्वाध्यायकारों ने पूर्वाचार्यों की वाणी को न समझते हुए कार्यकारण -व्यवस्था को ही बिगाड़ दिया। शुभोपयोग का अभाव शुद्धोपयोग है और शुद्धोपयोग केवलज्ञान का कारण है।'' आदि । मुनिश्री का यह कथन गम्भीर एवं विचारणीय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

डॉ. श्रेयांस कुमार जैन का आलेख ''सम्यक्चारित्र की उपादेयता'' मननीय है। चारित्र ही धर्म रूप मोह, क्षोभ रहित आत्मा का परिणाम है, वह साम्यरूप है। इस पर विवाद हो ही नहीं सकता। चारित्र दर्शन पूर्वक होता है। इसमें ज्ञान की भूमिका अहम है जो भेदविज्ञान से लेकर आत्मसिद्धि तक उपादेय है। शास्त्रों की जानकारी मात्र ज्ञान नहीं है। आत्मानुभवी को ज्ञानी कहा है। आचार्य आशाधर जी ने जैनागम के 'स्वाध्याय परमतप' है के भाव को ग्रहण कर अध्यात्म रहस्य श्लोक 55 में कहा है कि ''शुद्ध स्वात्मा सर्व प्रथम अशुभ उपयोग के त्याग सहित श्रुताभ्यास के द्वारा शुभ उपयोग का आश्रय करता है, पश्चात् शुद्ध उपयोग में ही अधिकाधिक रहूँ, ऐसी भावना भाता है और उसे धारण करता है।'' उन्होंने श्रुताभ्यास के अन्य उद्देश्य को बुद्धि का कौशल कहा है। इस दृष्टि से सद् अभिप्राय पूर्वक श्रुताभ्यास ईष्ट है।

दया की पुकार, न्याय की तुला, चावल के पाँच दाने एवं अन्य सामग्री मार्ग दर्शक है। सम्पादकीय, हमारी दो मुखी विचार अवधारणा को उजागर करता है। संस्थाएँ समय की उपज होती हैं उनका मूल्यांकन भी तटस्थ रूप से किया जाना अपेक्षित है। पृष्ठ 4 के अंतिम पद की टीप 'भट्टारक भ्रष्ट मुनियों की अवस्था है।' क्या यह नयी भट्टारकीय परम्परा का संकेत तो नहीं है, जो अधिक भयावह सिद्ध होगी। कृपया भट्टारक पुस्तक भिजवाने की कृपा करें।

डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल

प्रवचनांश : आचार्य श्री विद्यासागर जी

जो धर्म रूपी कील का सहारा लेकर चलता है वह संसार रूपी चक्की में पिसता नहीं है। धर्म एक ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा जीव संतुष्ट हुए बिना रह नहीं सकता। इसके द्वारा सिंह जैसे हिंसक पशु भी संतुष्ट होकर अपना हिंसक स्वभाव छोड़ देते हैं। धर्म जिस किसी रूप में स्वीकार किया जाता है उतनी मात्रा में संतुष्टी अवश्य आती है।

उपर्युक्त उद्गार संतश्रेष्ठ आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने कुण्डलपुर के विद्याभवन में अपने मंगल प्रवचनों में अभिव्यक्त किए।

आचार्य श्री ने अपने मंगल उद्‌बोधन में आगे कहा कि संसार में धर्म के अलावा अन्य कोई सारभूत तत्व नहीं है। संसारी प्राणी राग-द्वेष की चक्की में रात-दिन पिसता रहता है जिस तरह दो पाटों के मध्य धान पिस जाती है। किंतु जो धान, चक्की की कील के सहारे चली चाती है, वह पिसने से बच जाती है। उसी तरह जो प्राणी धर्म रूपी कील का सहारा ले लेते हैं वे संसार रूपी चक्की में पिसने से बच जाते हैं। मनुष्य संसार में रहकर भी आत्म संतुष्टि एवं तत्व ज्ञान के आधार पर मुक्ति का अनुभव कर सकता है। उन्होंने कहा कि संसार में रहने वाला ग्रहस्थ विषय और कषाय की सामग्री से बच नहीं सकता, किंतु धर्म के साथ रहने से वह कील की भाँति बच सकता है। धर्मात्मा जीव प्राण जाय किंतु धर्म का मार्ग नहीं छोड़ता क्योंकि उसके भीतर यह दृढ़ श्रद्धान होता है कि आत्म संतुष्टि, आत्मा का कल्याण इसी मार्ग से प्राप्त होता है। ऐसे साधक आत्म विश्वास और आत्म संतुष्टि के दम पर ही गुफाओं, पहाड़ों और कंदराओं में जाकर तपस्या करते हैं। उन्हें यह पूर्ण विश्वास होता है कि जब परिणाम आवेगा तो इसकी विराटता का मूल्यांकन नहीं कर सकते हैं, वह उस परम पद मोक्ष को भी सहज उपलब्ध करा देवेगा। आचार्य श्री ने कहा कि आत्म संतुष्टि का काल निश्चित नहीं, सम्यग्दर्शन जीव को कभी भी प्रकट हो सकता है। प्रत्येक जीव अपना संवेदन स्वयं करता है उसकी आत्मानुभूति के बारे में कोई भागीदारी नहीं कर सकता।

सुनील वेजीटेरियन
प्रचार प्रभारी

सदस्यों से विनम्र निवेदन

अपना वर्तमान पता 'पिन कोड' सहित स्वच्छ लिपि में निम्नलिखित पते पर भेजने का कष्ट करें, ताकि आपको ''जिनभाषित'' पत्रिका नियमित रूप से ठीक समय पर पहुँच सके।

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी
हरीपर्वत, आगरा (उ.प्र.)
पिन कोड - 282 002

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

श्री सोली जे. सोराबजी की एक दुःखद टिप्पणी

'दिगम्बर जैन महासमिति पत्रिका' (1-15 जुलाई 2003) में श्री मिलापचन्द जी जैन डंडिया, जयपुर का एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि विधिवेत्ता सोली जे.सोराबजी ने 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' दिल्ली के 2 मार्च 2003 के अंक में अपने कालम 'आउट ऑफ कोर्ट' में 'प्राइवेसी, न्यूडिटी एण्ड जाज' शीर्षक से दिगम्बर जैन समाज के बारे में एक सर्वथा अनर्गल एवं अनावश्यक टिप्पणी की है। उन्होंने लिखा है-

"The urge to bare one's body springs from different compulsions. A certain sect of Jains, Digambars, who move about uncovered in public invoke their right of religious freedom. Litigants who are incensed by an adverse court ruling have protested by baring themselves in the court room as happened in the court of Lord Justice Denning in London. There could not be a more glaring instance of contempt in the face of the Court. The most picturesque protest against the move to attack Iraq occurred in Australia when about 750 women shed their clothes in protest on a hillside near the coastal resort town of Byron Bay. Not to be outdone about 250 men took off their clothes and lay down to spell out the words 'Peace Man' on a rugby field to register their opposition to Washington's stance against Iraq. A joint protest perhaps would have had better effect in Australia. Capital Hill of course would be unmoved by such naked exhibitions."

डंडिया जी द्वारा उद्धृत श्री सोली जे. सोराबजी के ये वचन निश्चय ही दिगम्बर जैन समाज के लिए अत्यन्त दुःखद एवं आश्चर्यजनक हैं। उन्होंने दिगम्बर जैन मुनियों के नग्न विचरण करने की तुलना किसी कोर्ट के फैसले या ईराक पर अमेरिकी हमले का विरोध करने के लिए अपने शरीर का नग्न प्रदर्शन करनेवालों से की है। सोराबजी के कथन का आशय यह है कि जैसे इन लोगों का नग्नदेह-प्रदर्शन राजनीतिक कारणों से प्रेरित होता है, वैसे ही दिगम्बर मुनियों का नग्न विचरण भी राजनीतिक कारण से प्रेरित होता है और वह कारण है संविधान द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का मनमाना उपयोग करना। अर्थात् उनका नग्न होना किसी धार्मिक सिद्धान्त पर आश्रित नहीं है, अपितु केवल धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का मनमाना उपयोग करने की इच्छा से प्रसूत है। और ऐसा आशय प्रकट कर श्री सोराब जी ने दिगम्बर मुनियों को लगभग विकृत मनोवृत्तिवाला घोषित कर दिया है।

भारत के महाधिवक्ता जैसे महान् पद पर आसीन व्यक्ति भारतीय संस्कृति और इतिहास से इतना अपरिचित हो, भारतीय धर्मों और दर्शनों के ज्ञान से इतना शून्य हो कि वह दिगम्बर मुनियों के अपरिग्रह एवं वीतरागता के परिणामभूत, मोक्षसाधक नग्नत्व को इतनी हीन दृष्टि से देखे यह अत्यन्त आश्चर्यजनक और पीड़ादायक है। इससे भी अधिक आश्चर्य और पीड़ा की बात यह है कि इतने प्रसिद्ध विधिवेत्ता ने किसी दूसरे धर्म के विषय में उसका मर्म समझे बिना ऐसी गैर-जिम्मेदाराना, अज्ञानतापूर्ण और धार्मिक विद्वेष से प्रेरित टिप्पणी कैसे कर दी!

मोहन-जो-दड़ो और हड़प्पा के उत्खनन में प्राप्त नग्न जिन-प्रतिमाएँ इस बात के सबूत हैं कि दिगम्बर जैन धर्म कम से कम पाँच हजार वर्ष पुराना है। प्राचीन बौद्धसाहित्य में निगंठ नातपुत्त (निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र अर्थात् नग्नवेशधारी तीर्थंकर महावीर) की चर्चा तथा सम्राट् अशोक के शिलालेखों में निर्ग्रन्थों तथा ऐतिहासिक महाकाव्य 'महाभारत' में नग्नक्षपणक (दिगम्बर जैन साधु) के उल्लेख बतलाते हैं कि दिगम्बर जैन साधु आज से ढाई हजार वर्ष पहले भी विद्यमान थे और अशोक जैसे महान् सम्राट् अन्य सम्प्रदायों के साधुओं के साथ दिगम्बर जैन साधुओं का भी सम्मान करते थे और उनकी निर्विघ्न धर्मसाधना की व्यवस्था हेतु पृथक् से अमात्य नियुक्त करते थे। उदयगिरि (विदिशा म.प्र.) ऐलोरा, खजुराहो आदि की गुफाएँ और मंदिर इस बात के जीवन्त प्रमाण हैं कि प्राचीन हिन्दू राजा हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्मों को समभाव से देखते थे और दिगम्बर साधुओं के विश्राम हेतु भी गुफाओं का निर्माण कराते थे तथा उनके राज्य में दिगम्बर साधुओं को निर्बाध विचरण की स्वतंत्रता थी। इन महान् सम्राटों और राजाओं ने दिगम्बर जैन मुनियों के नग्न रहने को धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का दुरुपयोग नहीं माना। यदि उन्हें यह धार्मिक स्वतन्त्रता का दुरुपयोग प्रतीत होता, तो वे इस पर तुरन्त प्रतिबन्ध लगा देते, क्योंकि वह राजतन्त्र का जमाना था, लोकतंत्र का नहीं।

लोकतांत्रिक राजव्यवस्था तथा उसमें धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का समावेश तो वर्तमान युग की देन है। ऐतिहासिक युग के आरम्भ से सन् 1947 ई. तक तो राजशाही का ही बोलबाला था और इस सम्पूर्ण युग में दिगम्बर जैन साधुओं की परम्परा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्यमान थी। अतः इस राजतन्त्र में दिगम्बर जैन साधु धार्मिक स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने के लिए लोगों के बीच नंगे घूमते-फिरते थे, यह तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। इससे सिद्ध होता है कि दिगम्बर जैन साधुओं का नग्न रहना एक महान् दार्शनिक और आध्यात्मिक सिद्धान्त पर आधारित है। वह सिद्धान्त है मोक्ष के लिए स्वात्मा से भिन्न समस्त शरीरादि पदार्थों से राग छोड़ना और उनकी अधीनता से मुक्त होना। इसे जैन सिद्धान्त में अपरिग्रह और वीतरागता कहा गया है। वस्त्रत्याग आत्मभिन्न समस्त पदार्थों से राग छोड़ने का चरम परिणाम है। वस्त्रत्याग कोई भी स्वस्थमस्तिष्क मामूली आदमी नहीं कर सकता। या तो पागल व्यक्ति ही नग्न हो सकता है अथवा महान् संयमी, कामजयी और शीत, उष्ण, दंश मंशक आदि से उत्पन्न पीड़ाओं को शान्तभाव से सहन करने में समर्थ पुरुष ही। दिगम्बर जैन साधु इस अलौकिक श्रेणी के ही पुरुष हैं। उन्हें धार्मिक स्वतन्त्रता का दुरुपयोग करने के उद्देश्य से नग्न विचरण करनेवाला कहना अपनी कूपमण्डूक बुद्धि या प्रकृतजन-सामान्य समझ का परिचय देना है।

धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार का दुरुपयोग करने के उद्देश्य से कोई एक-दो व्यक्ति एक-दो दिन लोगों के बीच नंगे घूम सकते हैं, कोई एक ग्रूप माह-दो माह नग्न विचरण कर सकता है, किन्तु ऐसे विकृतमस्तिष्क लोग चौबीसों घंटे नग्न नहीं रह सकते, क्योंकि चौबीसों घंटे नग्न रहकर ठंड, गर्मी, खटमल, मच्छर आदि की पीड़ाएँ सहना उनके वश की बात नहीं है। किन्तु दिगम्बर जैन मुनि चौबीसों घंटे नग्न रहते हैं, लकड़ी के तख्त पर नग्न-शरीर सोते हैं, कड़कती ठंड में भी कम्बल-रजाई-चादर आदि नहीं ओढ़ते, मच्छरों के काटने पर भी उफ नहीं करते। क्या एकान्त में नग्न रहकर इन पीड़ाओं को समभाव से सहन करने का उद्देश्य भी धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का दुरुपयोग करना है? मात्र धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का दुरुपयोग करने के लिए कोई इतने कष्ट सहन करेगा, यह सोचना बुद्धि का दिवालियापन है। किसी महान् उद्देश्य के बिना नग्नता के इन कष्टों को समभाव से सहना संभव नहीं है। और किसी महान् उद्देश्य के बिना नग्न जैन साधुओं और उनके अनुयायियों की परम्परा का पाँच हजार वर्षों से निरन्तर चला आना असंभव है। अतः सिद्ध है कि दिगम्बर जैन मुनि धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार का दुरुपयोग करने के उद्देश्य से नहीं, अपितु मोक्षप्राप्ति के उद्देश्य से नग्न रहते हैं।

श्रमण परम्परा में साधुओं के नग्न रहने की प्रथा बहुत पुरानी है। भगवान् बुद्ध के युग में दिगम्बर जैन (निर्ग्रन्थ) साधुओं के अतिरिक्त आजीविक सम्प्रदाय के साधु भी नग्न रहते थे। उपनिषदों में परमहंस नामक साधुओं का वर्णन है, जो नग्नवेशधारी होते थे। हिन्दूधर्म में नागा साधुओं का आस्तित्व आज भी देखने में आता है। कुम्भ के मेलों में उनके दर्शन बड़ी मात्रा में होते हैं। क्या इन सब के नग्न रहने का उद्देश्य धार्मिक स्वतन्त्रता के अधिकार का दुरुपयोग करना है? यह बात तो स्वप्न में भी नहीं सोची जा सकती। अतः माननीय सोली जे. सोराबजी की दिगम्बर जैन साधुओं के विषय में की गई टिपण्णी न केवल दिगम्बर जैन धर्म का, अपितु सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति का अपमान है। इससे दिगम्बर जैन धर्म के अनुयायियों की भावनाएँ आहत हुई हैं। अतः माननीय सोराबजी को अपने पद की गरिमा और कर्त्तव्य का ख्याल रखते हुए अपनी टिप्पणी पर अविलम्ब खेद व्यक्त करना चाहिए।

मुम्बई के प्रसिद्ध दिगम्बर जैन पत्रकार श्री बाल पाटील ने सोराब जी की इस टिप्पणी पर सर्वप्रथम विरोध प्रकट किया है। श्री डंडिया जी ने दिगम्बर जैनों का आह्वान करते हुए लिखा है -

''यदि आप भी यह मानते हैं कि सोराब जी की टिप्पणी दिगम्बर जैन धर्मावलम्बियों के लिए मानहानि-कारक है तो कृपया सोली सोराब जी, सम्पादक 'टाइम्स आफ इण्डिया', श्रीमती इन्दु जैन तथा अध्यक्ष-प्रेस परिषद् को आज ही पत्र लिखकर अपना विरोध दर्ज करायें और इसकी सूचना श्री बाल पाटील को भी देकर उनके हाथ मजबूत करें। सुविधा के लिए इन सब के पते यहाँ दिये जा रहे हैं- ''

1. सोली जे. सोराब जी, भारत के एटार्नी जनरल, 10 मोतीलाल नेहरू मार्ग, नई दिल्ली - 110 011
2. श्री दिलीप पडगाँवकर, प्रबन्ध सम्पादक, टाइम्स आफ इण्डिया, बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110 002
3. श्रीमती इन्दु जैन, बैनेट कोलमेन एण्ड कं., बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110 002
4. जस्टिस के. जयचन्द्र रेड्डी, चेयरमैन, भारतीय प्रेस परिषद्, फरीदकोट हाउस (भूतल), कापरनिकस मार्ग, नई दिल्ली - 110 001
5. श्री बाल पाटील, 54 पाटील एस्टेट, 278, जावजी दादाजी रोड, मुम्बई - 400 007

'जिनभाषित' परिवार भी समस्त दिगम्बर जैनों से यही अनुरोध करता है।

रतनचन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संतप्रवर आचार्य विद्यासागर का कृतित्व एवं व्यक्तित्व

डॉ. संकटाप्रसाद मिश्र

श्रमण एवं श्रमण परम्परा के आदर्श सन्त जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी आर्ष परम्परा के श्रेष्ठ मुनि हैं। वे प्रेम, सेवा, वात्सल्य, उपकार, उदारता, दयालुता, उत्साह, उल्लास एवं नैतिकता के जीवन्त रूप हैं। ऐसे सन्त धरती के उद्धारक बनते हैं। सन्त का जीवन आचरण में समभाव रखता है। वह मानवीय मूल्यों का संरक्षक होता है। सन्त दूसरों के लिए जीता है, कथनी और करनी में सामंजस्य एवं तादात्म्य स्थापित करते हुए जनकल्याणकारी भावनाओं से सदा आप्लावित रहता है। ऋषि प्रवर विद्यासागर जी का जीवन नर्मदा के कंकर से शंकर बन गया है।

जैन धर्म पवित्रता का हामी है। क्षमा उसका प्राण है। उस प्राण को धारण करने वाले पवित्रता की मूर्ति श्री विद्यासागर जी हैं। वे केवल साधक ही नहीं बल्कि, लोकविश्रुत साहित्य-सर्जक भी हैं। वे माँ सरस्वती के वरदपुत्र हैं, जिव्हा पर माँ शारदा का प्रसाद विद्यमान है। वे हिन्दी सन्त काव्य परम्परा के कबीर हैं, रामकथा के अमर गायक तुलसी हैं और प्रज्ञाचक्षु,माखनचोर कृष्ण की बाल सुलभ चेष्टाओं का गायन करने वाले, सूर हैं। वे जैन धर्म के ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण मानवता के तीर्थराज प्रयाग हैं जहाँ इच्छा, क्रिया और ज्ञान की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है। उनके वचनामृत की त्रिवेणी में डुबकी लगाकर सारे पापों का प्रक्षालन कर श्रद्धालु धन्य हो जाते हैं। अपने अस्तित्व को जिस प्रकार गंगा गंगोत्री से निकलकर गंगासागर में विलीन कर देती है, अनन्त सागर का रूप धारण भी कर लेती है और जहाँ से शुभता के सजल मेघखण्ड उठते हैं और तप्त वसुन्धरा की प्यास को बुझाते हुए उसे शस्य श्यामला बना देते हैं, उसी प्रकार की पावनपूत धारा मुनि प्रवर, सन्तशिरोमणि आचार्य विद्यासागर के जीवन में प्रवाहित हो रही है। वे शुभता की वर्षा करते हैं, क्षमा के बीज बोते हैं और मधुरी बानी की उल्लासमयी जीवनधारा प्रवाहित करते हैं जिसमें जैन समाज ही नहीं बल्कि पूरा लोक, पूरा समाज डूब जाता है और ऐसा प्रसाद पाता है जिससे उसे परम आनन्द की, सुख की अनुभूति होती है। जीवन की मूकमाटी पवित्रघट बनकर, मानवता का शीतल जल पिलाकर दूसरे की पिपासा को शान्त करती है। यही मूकमाटी के अमर गायक का अन्तिम संदेश है, अभीष्ट भी। कोरा ज्ञान अहम् पैदा करता है, आस्था का जल नहीं पिलाता। संत ज्ञानामृत पीकर भाव की ऐसी गंगा और नर्मदा प्रवाहित कर देता है, ऐसे तीर्थों का निर्माण कर देता है जहाँ सामान्य जन सुकून का अनुभव करता है, जीने की प्रेरणा पाता है, जीवन का उल्लास पाता है और सदा-सदा के लिए भवसागर से पार उतर जाता है। लोग जीवन के विषाक्त बन्धनों से मुक्त होकर सदा के लिए आनन्द के सागर में डूब जाते हैं। जो नहीं डूब पाते उनका जीवन सदा के लिए बूड़ जाता है। इस जीवन के संसारी जन बीच में फँस जाते हैं, उद्धार नहीं पा पाते। उनकी सांसारिक जीवन बेड़े की नौका डगमगाती हुई बीच मझधार में डूब जाती है। 'अनबूड़े बूड़े तिरे, जे बूड़े सब अंग'। जो आनन्द के सरोवर में तन-मन से डूब जाते हैं वे मोक्ष पा जाते हैं, तिर जाते हैं और जो तन-मन से नहीं डूब पाते, वे बूड़ जाते हैं। वे नरक के कीच में धँस जाते हैं।

मुनि प्रवर विद्यासागर जी ने मूकमाटी में यही दर्शन प्रस्तुत किया है कि 'मूकमाटी' साधना की माटी है। वह अध्यात्म और साधना के निकर्ष पर इच्छा, क्रिया और ज्ञान के समन्वय से जीवन में सार्थकता की सृष्टि करती है, आनन्दमय वृष्टि करती है और मानवता का सन्देश देती है। यदि मनुष्य अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करना चाहता है तो उसे 'मूकमाटी' की साधना का मार्ग अपनाते हुए मंगलमय घट से आनन्द की वृष्टि करनी होगी। यही सन्त शिरोमणि, महाकवि विद्यासागर का उद्घोष है। 'मूकमाटी' सन्त विद्यासागर के जीवन की आत्मकथा है। वह सन्त साधना की, इन्सानियत की उदात्त महाकाव्यात्मक गाथा है। आचार्य विद्यासागर का जीवन सतोगुणी रहा है। एक महाव्रती के जीवन को उन्होंने जिया है और अपने सत्कर्मों से उसे सार्थकता प्रदान की है। सौन्दर्य दिया है। उनका जीवन उस नदी की धारा के समान है जो अपने अस्तित्व को मिटाकर महासागर में विलीन हो जाती है। व्यक्तित्व के अहं को, मद को मिटाकर अपने अस्तित्व को प्रभु के महासत्व में विलीन कर देना ही समर्पण की भावना का चरमोत्कर्ष है। आज के समाज में मनुष्य अहं और स्वार्थ के कीचड़ में सर्वथा आपादमस्तक धँसा हुआ है। आज के मनुष्य के स्वार्थ और उसकी संकीर्णताएँ पराकाष्ठा पर पहुँच गई हैं। वह अपने को, अपने प्रभु को भूल चुका है। ऐसे समय में आचार्य विद्यासागर का यह दोहा प्रेरणा का स्रोत बन सकता है। 'मूकमाटी' महाकाव्य के यशस्वी महाकवि संत विद्यासागर जी मनुष्य को जगाते हुए कहते हैं-

'देखो नदी प्रथम है निज को मिटाती
खोती, तभी, अमित सागर रूप पाती।
व्यक्तित्व के अहं को, मद को मिटादे
तू भी- 'स्व' को सहज में, प्रभु में मिला दे।'

निजता को मिटाकर 'स्व' को सहज रूप में प्रभु में विलीन कर देना ही मानव-जीवन की सार्थकता है। यही गुण धर्म आचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विद्यासागर के जीवन का चरम लक्ष्य है। वीतराग होकर वे इसी पथ के पथिक बने हैं और कालजयी आकाशदीप बनकर भवसागर में जीवन नौका खेने वालों को, भूले-भटकों को सही राह बताने के लिए उन्होंने सदैव आलोक दिया है तथा उनका पथ प्रशस्त किया है। बाह्याडम्बरों, पिष्टपेषित रूढ़ियों को उन्होंने सदैव धिक्कारा है, विरोध किया है। वे आज के कबीर हैं, रविदास हैं, गुरुनानक हैं । वे कह उठते हैं कि कच-लुंचन और वसन-मुंचन से व्यक्ति सन्त नहीं बन सकता। उसे सन्त बनने के लिए मन की विकृतियों का लुंचन-मुंचन करना पड़ेगा। सन्त प्रवर कहते हैं-

''न मोक्ष मात्र कच-लुंचन कर्म से हो,
साधु नहीं वसन-मुंचन मात्र से हो।''

संत दादू की तरह वे कर्मकाण्ड और परम्परागत रूढ़ियों का विरोध करते हुए कह उठते हैं-

''कीचड़ में पद रखकर
लथपथ हो
निर्मल जल से
स्नान करने की अपेक्षा
कीचड़ की उपेक्षाकर
दूर रहना ही
बुद्धिमानी है।''

यहाँ संत विद्यासागर जी क्रान्ति का स्वर फूँकते दिखाई देते हैं। वे केवल विद्रोही ही नहीं, क्रान्तिकारी भी हैं। उनकी क्रान्ति राजनीतिक नहीं, वह भावात्मक एवं सामाजिक कोटि की है। वे समष्टि के पुरोधा हैं। वे उच्चकोटि के साधक और मुनि प्रवर तथा संत प्रवृत्ति के होते हुए भी लेखनी के धनी साहित्यकार, कवि भी हैं। यद्यपि उन्होंने अनेकानेक सुन्दर ग्रन्थों, काव्य कृतियों की रचना की है परन्तु 'मूकमाटी' आधुनिक साहित्य में उनकी अप्रतिम कालजयी रचना है। केवल 'मूकमाटी' ही उनके कवि-व्यक्तित्व की सदियों तक प्रेरणा का स्रोत रहेगी। उनके कवि जीवन तथा साधना का निचोड़ इसी अमर कृति में है। आधुनिक श्रेष्ठ महाकाव्यों की परम्परा में उसे शीर्ष स्थान प्राप्त हुआ है। जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' के समान उसका लक्ष्य भी आनन्द की सृष्टि करना है। जिस प्रकार प्रसाद जी ने यह कहना चाहा है कि मनु अर्थात् मानव वासना के पंकिल या कीचड़ से निकल कर ही श्रद्धा और विश्वास को लेकर, वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाते हुए, आनन्द के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है, उसी प्रकार मूकमाटी का रचनाकार यह कहना चाहता है कि श्रद्धा और विश्वास के अमृत को पीकर, विज्ञान-संम्मत दृष्टि अपनाकर, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान ओर सम्यक्‌चारित्र का अवलम्बन लेकर मनुष्य आनन्द की सृष्टि कर सकता है। 'कामायनी' की भाँति 'मूकमाटी' जीवन्त महाकाव्य है, स्वच्छन्द शैली का परिपक्व काव्य है। जहाँ मूकमाटी, जो पतितवासना है, पतितवासना भी सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चरित्र के आँवे में पककर परिपक्व कुम्भ का रूप धारण करती है और मानव मात्र को आनन्द का शीतल जल पिलाकर, उसकी ज्ञान पिपासा को शान्त करते हुए आत्मा का उद्धार करती है। यही मोक्ष है, अमरत्व है और मनुष्य का अविनश्वर सुख। महाकवि कहता है-

''बन्धन रूप तन, मन और वचन का
आमूल मिट जाना ही मोक्ष है
इसी की शुद्ध दशा में अविनश्वर सुख होता है
जिसे
प्राप्त होने के बाद
यहाँ संसार में आना कैसे सम्भव है
तुम्हीं बताओ
विश्वास की अनुभूति मिलेगी
अवश्य मिलेगी, मगर
मार्ग में नहीं, मंजिल पर।
और यहाँ मौन में डूबते हुए सन्त .....
और माहौल को अनिमेष निहारती - सी
'मूकमाटी' ! ''

'मूकमाटी' के अमर रचनाकार ने एक रूपक प्रस्तुत किया है जिसमें जीवन का सत्य पिरोया हुआ है। संत ने मानव जीवन को निकट से देखा है, परखा है और जिया है। जीवन का साक्षात्कार ही मूकमाटी की रचना का आधार बना है जिसमें मनुष्य की जीवन-यात्रा का सहज-सरल चित्र उकेर दिया गया है। आदमी से बढ़कर कोई योनि नहीं है, आदमी से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। यह ग्रन्थ मानवता का सफरनामा है। मानव जीवन का उपनिषद् है। देवता भी इस मानव जीवन की लालसा रखते हैं। पृथ्वी एक कुरुक्षेत्र है, धर्मक्षेत्र है, कर्मक्षेत्र है और मनुष्य एक योद्धा एक सिपाही। संघर्ष उसके जीवन का निकष है। संघर्ष का सिपाही सदैव मंगल की ही सृष्टि करता है। मूकमाटी का अमर गायक यही कहना चाहता है। यही उस मुनि प्रवर का आशीर्वाद है।

''यहाँ .... सबका सदा
जीवन बने मंगलमय
छा जावे सुख-छाँव
सबके सब टलें-
अमंगल भाव,
सबकी जीवनलता
हरित-भरित विहँसित हो।
गुण के फूल विलसित हों
नाशा की आशा मिटे
आमूल महक उठे।''

ऐसे मुनि प्रवर साधक को मेरा कोटिशः प्रणाम।

एफ-115/27, शिवाजी नगर, भोपाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमण परम्परा के आदर्श संत जैनाचार्य विद्यासागर जी और उनका तीर्थ

डॉ. पी.सी. जैन

भारत भूमि पर जब-जब वैचारिक भटकाव की स्थिति आयी तब-तब शांति सुधारस की वर्षा करने वाले अनेक महापुरुषों एवं कवियों ने जन्म लेकर अपनी कथनी-करनी के माध्यम से विश्व को एकता के सूत्र में पिरोया तथा त्रस्त एवं विघटित समाज को एक नवीन सम्बल प्रदान किया। इन महापुरुषों में प्रमुखतया भगवान् राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, ईसा, पैगाम्बर, संतकबीर, नानक, कुन्द-कुन्दाचार्य जैसे महान् साधकों ने अपनी आत्म साधना के बल पर स्वतंत्रता एवं समानता के जीवन मूल्य प्रस्तुत करके सम्पूर्ण मानवता को एक सूत्र में बांधा है। इनके त्याग, संयम, सिद्धांत एवं वाणी में आज भी सुख शांति की सुगंधा सुवासित है। इस क्रम में संत कवि जैनाचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज वर्तमान समय में शिखर पुरुष हैं, जिनकी ओज और माधुर्यपूर्ण वाणी में ऋजुता, व्यक्तित्व में समता, जीने में सादगी की त्रिवेणी प्रवाहित है। सन् 1968 में मुनिव्रत एवं सन् 1972 में आचार्य पद ग्रहण करने के पश्चात् अपनी कर्मभूमि में सतत् क्रियाशीलता का परिणाम है कि वर्तमान में करीब 200 शिष्य श्रमण, साधना, तप, ध्यान, नियम, संयम एवं समता का पालन कर श्रमण संस्कृति की विकास यात्रा में सहयोगी बने हुए हैं।

आचार्य विद्यासागर उच्च कोटि के साधक और संत होते हुये एक श्रेष्ठ साहित्यकार भी हैं। आपने उत्कृष्ट साधना के साथ-साथ रचना शीलता के विविध सोपानों, आयामों को स्पर्श कर चिंतन-मनन और दर्शन की जो त्रिवेणी प्रवाहित की है वह नि:संदेह अद्वितीय है। आपने केवल गद्य ही नहीं अपितु पद्य की अनेक विधाओं को जो सरलता प्रदान की है वह अनुकरणीय है। आपने साहित्य के द्वारा जिस यथार्थ की अभिव्यक्ति अध्यात्म एवं दर्शन के माध्यम से की है वह काफी बेजोड़ है। आपकी रचनाओं में राष्ट्रीय चेतना के स्वर सुनाई पड़ते है। नारी की व्याख्या समकालीन दृष्टि से नये संदर्भों में की है जो वास्तव में सामाजिक विकास की धुरी है। दार्शनिक विचारों की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि जीवन का सारत्व निज स्वरूप को पहचानने में है। आत्म दर्शन के द्वारा ही विश्व दर्शन की प्रक्रिया को समझा जा सकता है। आचार्य श्री की प्रमुख रचनाओं में नर्मदा का नरम कंकर, डूबो मत लगाओ डुबकी, तोता क्यों रोता, दोहा दोहन, चेतना के गहराव में, पंचशती इत्यादि हैं। आपका सर्वाधिक चर्चित महाकाव्य "मूकमाटी" है, जिसमें आचार्य श्री ने माटी जैसी निरीह, पददलित, व्यथित वस्तु को महाकाव्य का विषय बनाकर उसकी मूक वेदना और मुक्ति की आकांक्षा को वाणी दी है। कुम्हार मिट्टी की भावना को पहचानकर उसे कूट छानकर सभी व्यर्थ द्रव्यों को हटाकर निर्मल, मृदुता का वर्ण लाभ देते हुये चाक पर चढ़ाकर अवे में तपाकर उसे कार्य योग्य बनाता है, जो आगे चलकर पूजन का मंगल घट बनकर जीवन की सार्थकता को प्राप्त करता है। यह कर्मबद्ध आत्मा की विशुद्धि की ओर बढ़ती मंजिलों की मुक्ति यात्रा का रूपक है। महाकाव्य की रचना के पीछे आचार्य श्री का ध्येय मानव पीढ़ि को शुभ संस्कारों से सांस्कारित करना तथा सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में प्रविष्ट कुरीतियों को निर्मूल करना व्यक्ति के अंदर आस्था, विश्वास, पुरुषार्थ और कर्त्तव्य की भावना तथा चरित्र एवं अनुशासन का दैनंदिन प्रयोग इस कृति का पार्थेय है। महाकाव्य में नारी स्वतंत्रता, लोकतंत्र की स्थापना, आयुर्वेद की महत्तता, अहिंसा की गरिमा आदि आचार्य श्री की बहुज्ञता का परिचय देती है।

आचार्य श्री की तीर्थयात्रा बहुआयामी है उनमें प्रमुखतया:-

(1) जीवदया
(2) धर्म प्रचार
(3) तीर्थक्षेत्रों का जीर्णोद्धार
(4) जैन साहित्य शोध
(5) नैतिक शिक्षा

(1) जीवदया - गौवध एवं मांस निर्यात पर पूर्ण प्रतिबंध लगाने एवं गौवंश को बचाये रखना भारतीय संस्कृति को बचाये रखना बराबर है। गौवंश की सुरक्षा करने से प्राणी मात्र के प्रति दयाभाव एवं अहिंसा का पालन होता है। गाय एक ऐसा बहुआयामी प्राणी है जिसका दूध, बछड़ा, मूत्र, गोबर एवं चमड़ा तक काम में आता है। अत: कृषि प्रधान देश में सहायक धंधे के रूप में गाय को पालकर अतिरिक्त धनोपार्जन किया जा सकता है। गौवंश नष्ट या लुप्त प्राय होने की स्थिति में प्राकृतिक सन्तुलन गड़बड़ा सकता है, इससे प्राकृतिक आपदाओं की बारम्बारता बढ़ सकती है। आचार्य श्री देश के विभिन्न क्षेत्रों में गौशालाओं का निर्माण करके प्राणी मात्र को बचाने का सतत् प्रयास कर रहे हैं।

(2) धर्म प्रचार - आज से 50 वर्ष पूर्व देश में यह स्थिति थी कि मुनि के दर्शन दुर्लभ थे। अनेक जैन बन्धुओं की एक-दो पीढ़ि ने मुनिराजों के दर्शन ही नहीं किये थे। परिणामस्वरूप उनकी धार्मिक क्रियाओं के ढंग ही बदलते जा रहे थे। हम सभी सौभाग्यशाली हैं कि हमारा जन्म ऐसे समय हुआ जब आचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरूवर को एक बड़े संघ के रूप में देख रहे हैं। जो देश के दूरस्थ क्षेत्र में छोटे-छोटे उपसंघों के रूप में उपदेशना दे रहे हैं।

(3) तीर्थक्षेत्रों का जीर्णोद्धार - तीर्थक्षेत्र वे स्थान हैं जहाँ से तीर्थंकरों ने अपने को भव से पार उतारा है। ऐसी पवित्र भूमि पर पहुँचने से हमारा भव भी पार हो सकता है। संसार में मनुष्य को मानसिक शांति मंदिरों एवं तीर्थ स्थलों पर ही मिलती है। अत: जरूरी है कि प्राचीन तीर्थस्थलों पर कंकर, पत्थर से बने मंदिरों, जिनका एक निश्चित जीवन होता है, का जीर्णोद्धार किया जाये। मूर्तियों व मंदिरों की प्राण प्रतिष्ठा की जाय ताकि जनमानस में तीर्थक्षेत्र, मंदिर के प्रति श्रद्धा में कमी न आने पाये। धर्म और समाज एक दूसरे के पूरक हैं। समाज जहाँ रहेगी वहाँ मंदिर होगा अत: मंदिरों का निर्माण समय के साथ चलता रहेगा।

(4) जैन साहित्य शोध - धर्म साहित्य सुलभ एवं सरल भाषा में हो तभी व्यक्ति धर्म के मर्म को आसानी से समझ सकता है। आचार्य श्री ने प्राचीन जैन साहित्य का सरल हिन्दी में अनुवाद करके साहित्य की लम्बी श्रृंखला उपलब्ध करायी है। इसका परिणाम है कि आम व्यक्ति समयसार, नियमसार, प्रवचनसार, समणसुक्तं आदि ग्रन्थों को आसानी से समझने लगे हैं। प्राचीन ग्रंथों की सुरक्षा एवं अनुवाद का परिणाम है कि जैनधर्म को अतिप्राचीन धर्म की श्रेणी में तर्कसंगत ढंग से रखा जाने लगा है।

(5) नैतिक शिक्षा - भारतीय संस्कृति एवं साहित्य साक्षी है कि नवपीढ़ि को संस्कारित करना पालक एवं गुरु का कर्त्तव्य है और नवपीढ़ि का कर्त्तव्य होता है स्वावलंबित बनकर गुरु को सम्मान देकर एवं पालक की वृद्धावस्था में सेवासुश्रुषा करके अपने फर्ज को निभाना। वर्तमान विश्वीकरण के युग में भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य संस्कृति का ऐसा प्रभाव पड़ा है कि पालक बच्चों को पालन, पोषण कर बड़ा करता है अपने जीवन की पूरी कमाई बच्चों की शिक्षा-दीक्षा पर खर्च कर देता है। इस उम्मीद में कि बच्चे बड़े होकर बुढ़ापे का सहारा बनेंगे, किन्तु बच्चे बड़े होकर अपेन फर्ज से मुँह मोड़ लेते हैं। परिणामस्वरूप पालकों को अपना बुढ़ापा वृद्धाश्रम में निकालना पड़ता है या स्वयं जर्जर शरीर को ढोना पड़ता है। पालक एवं गुरु के प्रति बालक या शिष्य का क्या कर्त्तव्य है इसकी अनुकरणीय मिशाल आचार्य विद्यासागर जी महाराज हैं। आचार्य श्री ने अपने गुरु ज्ञानसागर जी महाराज से दीक्षा लेकर अंत समय तक इतनी अधिक सेवा की जितना एक पुत्र अपने पिता की नहीं करता। आचार्य ज्ञानसागर महाराज को बढ़ती उम्र में साइटिका का असहनीय दर्द हो गया था। उस स्थिति में वृद्ध शरीर को मुनि क्रियाओं के अनुकूल बनाये रखने के अथक प्रयास शिष्य विद्यासागर जी महाराज ने किये जब तक कि गुरु ज्ञानसागर समाधिष्ट नहीं हो गये। यह आज की नवपीढ़ि के लिए परिवार से जुड़े रहने पालक एवं गुरु के जीवन भर ऋणी रहने का अनुकरणीय उदाहरण है।

इस प्रकार आचार्य गुरुवर के तीर्थ की गहराई अनंत है। इस समुद्ररूपी सागर की एक बूँद भी यदि हम आत्मसात कर लें तो हमारा उद्धार हो जायेगा।

प्रोफेसर
शासकीय कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)

कविता

योगेन्द्र दिवाकर

अन्तर्मन की लेखनी
गुरु का लिये प्रकाश।
सत्य अहर्निश कर रही,
सम्यक आत्म विकास।

गुरु प्रकाश स्तम्भ हैं,
मोक्षमार्ग की ओर
ज्योतिर्मय जिनसे हुई,
ऊँकारमयी भोर॥

सतना (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धार्मिक अनुष्ठानों में प्रतीकों का महत्त्व

मुनि श्री चन्द्रसागर जी

भूमिका - प्रतीक हमारे जीवन के पथ-प्रदर्शक चिन्ह हैं, जिन चिन्हों व संकेतों के द्वारा कार्य की गति को प्रगति की दिशा तक ले जाया जा सकता हैं। बिना प्रतीकों के चलना भारमय सा लग सकता है। प्रतीक मार्ग में मील के पत्थर का काम करते हैं। एक एक प्रतीक में जीवन की सच्चाई छुपी हुई होती है। समझने वाला समझकर मझदार में गिरने से बचकर निकल सकता है। प्रतीक जीवन का वह पहलू है जहाँ पर आदर्श छुपा होता हैं। सूत्र के समान गहन एवं अनेक अर्थ वाचक होता है। अनेकता में भी एकता का दर्शन हमें प्रतीकों के द्वारा ज्ञात हो जाता है। ये सिन्धु से पार कराने वाले समस्या के समाधान बिन्दु हैं। हिन्दु हो, जैन हो, मुस्लिम हो, ईसाई हो को कोई भी हो सभी जगह अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार प्रतीकों का प्रयोग हुआ करता है। कई प्रतीक सभी जगह एक से हैं समीचीन प्रतीकों, संकेतों से ही हमारा उद्धार हो सकता है।

दीपक - 'अप्प दीपोभव' का सूत्र अपना दीपक स्वयं बनने का पथ दिखलाता है। स्वयं प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित करें। अकेला एक ही दीपक अंधेरे को उजाले में बदलने के लिए पर्याप्त है। तेल और बाती अपना अस्तित्व खोकर जलकर प्रकाश देने का, प्रकाशित होने का धर्म निभाना सिखाता है। शरीर मिट जावे पर आत्मप्रकाश कभी नहीं मिटता। दीपक प्रकाश के द्वारा परोपकार का कार्य करना चाहता है। इसी प्रकार हमें वह परोपकार करने की सीख सिखाने आता है। जो दिशा का बोध करा दे वह दीपक है नामधारी नहीं कामधारी है। जब तक दीपक में तेल रुपी प्राण रहते हैं तब तक वह जीवित रहकर भटके जनों को प्रकाश देने वाला दाता है। प्रभु के समीप दीपक समर्पण करने का मतलब इतना ही है कि वह ज्योति प्राप्त हो जो तीनों लोक के पदार्थों को स्पष्ट रुप से जान सके। वह है केवल ज्ञान ज्योति जहाँ से आत्मप्रकाश का रास्ता स्पष्ट हो जाता है। जनम, मरण का चक्कर छूट जाता है। दीपक तले अंधेरे वाली युक्ति समाप्त हो जाती है, और रत्न दीपक की उपमा पा जहाँ प्रकाश ही प्रकाश चहुँ दिशा में, अंधेरे का नाम नहीं।

बंदनवार - द्वार की मर्यादा का ज्ञान व अतिथि सत्कार का महत्व वंदनवार से ही ज्ञात होता है। वहीं पर अतिथि का अभिनंदन किया जाता है। शुभ मांगलिक कार्यों में बंदनवार तीज त्यौहारों में आम्र पत्तियों से मार्ग, घर के बाहर, द्वार, आंगन की शोभा बढ़ाई जाती है। मद के मर्दन की यात्रा बंदनवार दर्शाता है। जहाँ मान का मर्दन, विसर्जन, वंदन, अभिनंदन की यात्रा प्रारम्भ कर आत्म अभिनंदन को प्राप्त करना आम की हरी पत्तियाँ जीवन में आशा की तरंग पैदा कर, जीवन को हरा भरा बनाने का पथ दर्शाती हैं कि जो भी आयेगा हरा- भरा बन जायेगा इसका अर्थ यह है कि उसके सम्मान में कोई कमी नहीं रहने पायेगी।

स्वास्तिक- स्वास्तिक शुभ सूचक मंगल वाचक चिन्ह है। उल्टा स्वास्तिक अशुभ, विघनकारी माना जाता है। सीधा स्वास्तिक मंगलकारी सुकाल को देने वाला होता है। इसे सांतिया भी कहते हैं। जिससे जीवन में सुख शांति की प्राप्ति हो। इसके चारों कोने चतुर्गति भ्रमण से छूटने का संकेत देते हैं। प्रभु के समक्ष स्वास्तिक का समर्पण करना ही चतुर्गति से मुक्त होने की प्रार्थना करना है। स्वास्तिक के बीच में जो चार खाली स्थान हैं एवं बीच का वह बिन्दु जो चारों कोनों को जोड़ता है। इस प्रकार ये पाँच स्थान पंचेन्द्रियों के सूचक हैं। वे पाँच इन्द्रियाँ हैं- (1) स्पर्शन (2) रसना (3) घ्राण (गंध) (4) चक्षु (5) श्रोत्र इन पाँचों इन्द्रियों के विषयों से बचने से इन्द्रिय विजेता बनने का संकेत किया करते हैं। स्वास्तिक स्वस्थ्य रहने की, आत्मस्थ रहने की प्रेरणा देता है जोकि पूज्य पवित्रता का प्रतीक है।

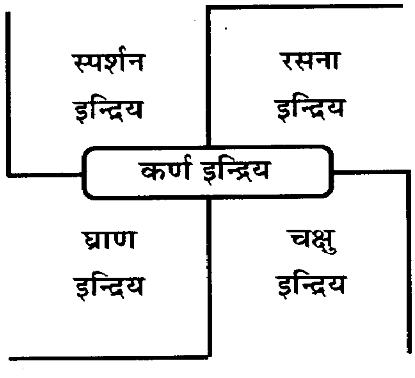

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जयमाल- जयमाल विजय माल है। आपको अष्ट प्रातिहार्य में देवमाला लिये पुष्पवृष्टि की मुद्रा में श्री जी के बाजू में देखने मिल सकते हैं। जो कि पुष्पवृष्टि का संकेत करते हैं जय उसी की होती है, जो विजय को प्राप्त होता है प्रभुत्व गुण को पाने वाला ही पुष्पवृष्टि के वैभव को प्राप्त कर सकता है। जिससे जीवन में सुगन्ध आ जाती है और अन्य लोग की सुगन्ध की गंध लेकर अपना जीवन सफल बना सकते हैं। माल का अर्थ वैभव होता है जहाँ भव का समापन होता हैं। जन्म मरण छूट कर शरीरातीत हो जाते हैं। वह परम सिद्ध शिला मिल जाती है। जयमाल को गुणगानों की माला भी कह सकते हैं।

श्रीफल- श्री का अर्थ मोक्ष रुपी लक्ष्मी, संयम रुपी फल श्रीफल, पानीफल के नाम से भी जाना जाता है। इसे नारियल भी कहते हैं और श्रद्धा फल भी कहते हैं। जो पानी को तेल रुप में अर्थात् तत्व के रुप में परिवर्तित कर दे वही सत्य (रियल) है। बाकी सब नारियल हैं। श्रद्धा से प्रभु के गुरु के समक्ष चढ़ा दिया तो वह फल श्रद्धाफल बन जाता है। श्रद्धा का अर्थ सम्यग्दर्शन से जुड़ा हुआ है। श्रीफल बाहर में कठोर और अंदर से मृदु होता है। यह सज्जनों को, यही उपदेश देता है कि वह अंदर से मृदु और बाहर से कठोर बनें। मृदुता रखना ही श्रीफल का संकेत है। श्रीफल हिलाने से बजता है अर्थ यह हुआ उसने गुणों को प्राप्त कर लिया है तथा अवगुणों को सुखा दिया है, पानी सुखा कण-कण को तेलमय बना देता है, परिपक्वता आ जाने पर वह बोलने लगता है, बजने लगता है इससे यह सिद्ध हुआ कि श्रीफल का बजना दिव्य ध्वनि का प्रतीक है।

अक्षत - अक्षत जिसका क्षय न हो, कभी नाश को प्राप्त न हो जन्म मरण से परे जिसका जीवन है जो बीज जमीन में बपन करने (बोने) के बाद भी अंकुरित नहीं होता अक्षत - चांवल के बदले अक्षय पद की कामना है जो पद एक बार मिलने के बाद समाप्त न हो जिसके सामने दुनियाँ के सारे पद बौने (छोटे) पड़ जायें, ऐसा पद सिद्ध परमात्मा का ही है। यह है भारतीय जैन संस्कृति जो चावल के बदले में मोक्षपद की अभिलाषा रखता है चावल अक्षत, उज्ज्वलता, धवलता, निस्कलंकता का द्योतक है। जब तक संसार न छूटे तब तक जिन धर्म पंचपरमेष्ठी की शरण न छूटे। हमारी बंद मुट्ठी में चावल हमें मंदिर जाने की स्मृति दिलाते हैं। अखण्ड अक्षत अखण्डता को प्राप्त करने की भावना से अर्पित किये जाते हैं। जिसका खण्डन न किया जा सके अक्षत सूखा प्रासुक द्रव्य है। जहाँ हिंसा को जगह नहीं क्योंकि 'अहिंसा परमोधर्मः' यह जैन संस्कृति प्रासुक वस्तुओं से पूजा आराधना की संस्कृति है।

हरिद्रा- हरिद्रा दरिद्रता को मिटाने वाली पीले वर्ण की हल्दी है, जो कि मांगलिक कार्यों में अपना स्थान रखती है। हल्दी की गाँठ जीवन की गाँठों परेशानियों के समापन की कामना लिए हुये है। पीला रंग मांगलिकता का सूचक है जिसमें शांति की छाया समाहित है। हरिद्रा हरिप्रभु के रंग में रंगने का संकेत दर्शाती है। पीला रंग भारतीय रंगों में मांगलिक माना जाता है। धार्मिक अनुष्ठानों में रंगा हुआ पंचरंगा धागा हाथ में रक्षासूत्र के रुप में बांधा जाता है तब पीला रंग अवश्य अपना रंग रुप दर्शाता है। पहले एक जमाना था जब रसोईघर में पीला रंग अवश्य किया जाता था। वैसे भी रसोईघर की शोभा का कारण हरिद्रा हल्दी ही है। जीवन के रोगों की समाप्ति का संकेत बिन्दु हरिद्रा है।

सरसों - जीवन का रस भंग न हो इसलिए धार्मिक अनुष्ठानों की निर्विघ्नता के लिए पीले सरसों से दिशाओं को मंत्र पढ़कर बांधा जाता है। यह धान्य भी धार्मिक अनुष्ठानों में अपना स्थान पा गये। सरसों का अर्थ रसों का संग्रह अर्थात् नीरसता का समापन। मंत्रवादी की मुट्ठी में पीले सरसों के आ जाने से मंत्र की शक्ति निमित्त पाकर बढ़ जाती है। ऐसा जान पड़ता है मानो सौ रोगों की एक दवा हो। जहाँ सरसों की फसल हो वहाँ ही हवा शुद्ध होती है। सरसों को धान्य का सतगुरु भी कहा जा सकता है। ऐसा सरसों शब्द से ही ध्वनित होता है। सरसों जहाँ है वहाँ वर्षों की आवश्यकता नहीं, मिनटों में कार्य सम्पन्न होता है।

कलश- कलश भारतीय संस्कृति में मांगलिक कार्यों में मंगल, शुभ और पवित्रता का सूचक है। मंगल कार्य को प्रदर्शित करने के लिए कलश प्रतीक के रुप में सुहागवती माताएँ एवं कन्याएँ अपने सिर पर धारण करती हैं। मंगल घट यात्रा में कलशों में जल धारण कर वाह्य शुद्धि की जाती है जो कि एक महत्वपूर्ण क्रिया मानी जाती है।

भरे कलशों से जीवन हरा भरा बने इसका संकेत मिलता है। कलश के भीतर शुद्ध छना जल, पान की पत्ती, हल्दी की गाँठ, सुपारी डाली जाती है, जो सुख-समृद्धि का सूचक माना जाता है। कलश के मुख पर पंचरंगी धागा बाँधना पाँच पापों से बचकर जीवन जीने की प्रेरणा देता है और कलश के उदर पर किया अंकन भारतीय दर्शन का, चारित्र का, नैतिकता का दिग्दर्शन कराता है, जैसे स्वास्तिक चारों गतियों से बचने का उपदेश देता है, सिद्ध शिला का दर्शन, आत्मदर्शन करने का संकेत देता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पशु पक्षी, देवी देवता, स्त्री-पुरुष के चित्र अंकन भगवान् की समशरण सभा का प्रतीक है और भी जैसे शेर, गाय का चित्रांकन, बैर अभिमान को छोड़कर मैत्रीभाव स्थापित करने का संकेत देता है। वैसे भी भारतीय लोक व्यवहार में मांगलिक अवसरों पर घर में मेहमानों के प्रवेश करने पर प्रवेश द्वार पर मंगल कलश लेकर खड़े होकर आगवानी की जाती है, जो कि सम्मान सूचक है। यात्रा की सफलता का सूचक है।

धूप - धूप हवन के समय होम में प्रयोग की जाती है। यह पूजन विधान की समापन क्रिया में अधिकांश प्रयोग में लाई जाती है। वैसे नित्य पूजा में भी धूप का प्रयोग होता है। धूप को अग्नि में समर्पित करने का अर्थ केवल इतना ही है कि धूप को प्रतीक बनाकर अष्ट कर्मो का दाह करना है। क्योंकि जब तक कर्म हैं तब तक संसार है। जब तक कर्मों का बंधन है तब तक जन्म -मरण नहीं छूट सकता। जन्म-मरण से छूटने की प्रार्थना प्रभु के समक्ष धूप खेकर मंत्र उच्चारण के साथ की जाती है।

चंदन- भव सागर की भयानक दावानल का संताप दुखमय वातावरण बनाये हुये है। इस दुख से बचने के लिए चंदन ताप के समय शीतलता देने का संकेतक चिन्ह है। इसकी सुगंध से सभी प्रभावित हो जाते हैं। शीतलता सभी को भाती है चंदन इसलिए चढ़ाते हैं कि हे प्रभु मुझमें भी चंदन जैसी शीतलता आ जावे। जिससे जीवन पवित्र सुगंध मय हो जावे। गुणों के कारण ही चंदन की प्रसिद्धि है इसी प्रकार व्यक्ति की पूजा भी उनके गुणों से व्यक्तित्व के कारण होती है। चंदन की सुवास से प्रभावित हुए बिना कोई रह ही नहीं सकता है। हिम के समान शीतल शांत गुणों को धारण कर उष्णता, क्रोधादि विकार भावों को छोड़ भद्र परिणामी बन सकूँ। यही चंदन चढ़ाने का समर्पण करने का भाव है यही चंदन के शीतल गुणों से ध्वनित होता हैं।

उपसंहार - गौतम बुद्ध ने अपने अंतिम उपदेश में "अप्प दीपोभव" के सूत्र का व्याख्यान करते हुए कहा अपना दीपक स्वयं बनो अर्थात् अपने सहारे चलो, दीपक आंगन में प्रकाश फैलाता है, किसी को जलाता नहीं और न ही किसी को भयभीत करता है बल्कि भय कराने वाले तम् अंधकार को दूर करता है। वह हमारे जीवन में जलाने का नहीं बल्कि जिलाने का कार्य करता है। यदि इसके बाद भी मन में अंधकार और तन पर दुख बना रहता है और शक्ल में बदलाहट नहीं आती तो समझना दीपक का कोई दोष नहीं है। यह तो जीवन को परिवर्तित करने का माध्यम मात्र है। बंदनवार द्वार का पहरेदार बनकर हमें दिशा का बोध कराता है। अहंकार न करने का संकेत देता है क्योंकि अहंकार पतन का कारण है। नम्र हो जाओ, जिससे अहंकार मद स्वयं गल जावेगा। स्वास्तिक स्वस्थ्य जीवन का आहार स्वाहस्त क्रिया का द्योतक तत्व बनकर हमारे अनुष्ठानों के अनुपालन में सफलता को गतिशीलता प्रदान करता है। जयमाल, विजयमाल पहनाता है, अष्ट प्रतिहार्य में से एक प्रतिहार्य का रुप दर्शाता है। श्रीफल श्रद्धा का प्रतीक बन सम्यग्दर्शन की प्रेरणा देता है। अक्षत अक्षय सुख प्राप्ति का उपाय बताता है। हरिद्रा को मिटाने का संकेत देता है। सरसों शब्द से यह ध्वनित होता है कि वर्षों का कार्य पल भर में पूर्ण होता है। भरा हुआ कलश-हरे भरे जीवन व मंगल जीवन यात्रा का प्रतीक है। धूप कर्मदाह की क्रिया का संकेत करती है। चंदन संतप्त जीवन की तपन को शीतलता के रुप में बदलने का प्रतीक है। इस प्रकार अंत में यह कहना चाहूँगा कि प्रतीकों के द्वारा जीवन की विपरीत धारा को बदला जा सकता है। सरलता और सहजता का अनुभव सहज ही प्राप्त किया जा सकता है।

आचार्य श्री विद्यासागर के सुभाषित

- **सम्यग्दृष्टि (वीतराग सम्यग्दृष्टि) का भोग निर्जरा का कारण है ऐसा कहा गया है लेकिन ध्यान रखना भोग कभी निर्जरा का कारण नहीं हो सकता। यदि भोग निर्जरा का कारण हो जाये तो क्या त्याग बंध का कारण होगा ?**
- **पथ पहले विचारों में बनते हैं तदनुरूप विचारों के पथ आचरण में आते हैं।**
- **एकांत से निमित्त को मुख्य मानकर उस की ओर ही देखने से उपादान में कमजोरी आती है।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन की मौलिकता

मुनि श्री विशुद्धसागर जी

जैनदर्शन विश्व के दर्शनों में अपनी एक विशेष अहं भूमिका रखता है। जहाँ विभिन्न दर्शन शास्त्र पूर्वापर विरोध से युक्त दृष्टिगोचर होते हैं, वहाँ जैनदर्शन उक्त दोषों से रिक्त है, एकान्त दृष्टि का निरसन करने वाला स्याद्वाद, अनेकान्त सिद्धान्त के माध्यम से विश्व में विख्यात दर्शन है। सर्वज्ञवाणी को मानने वाला है। जैनदर्शन सामान्य व्यक्ति की बात को स्वीकार नहीं करता। जब तक आत्मा अरहत् अवस्था को प्राप्त नहीं होती तब तक उसे क्षद्मस्थ अवस्था कहते हैं। केवलज्ञान होने पर अरहन्त अवस्था प्रकट होती है। केवली भगवान् की वाणी को ही सर्वज्ञवाणी कहते हैं। सर्वज्ञवाणी के आधार से जो भी अन्य आचार्य भगवन्त कहते हैं वह बात भी प्रमाणित मानी जाती है, परन्तु स्वतंत्र चिन्तवन जैनदर्शन स्वीकार नहीं करता। वाणी में स्याद्वाद, दृष्टि में अनेकान्त, चर्या में अहिंसा जैनदर्शन के मूल प्राण हैं। जैन आगम चार भागों में विभक्त है, जिन्हें चार अनुयोग कहते हैं, ये ही चार अनुयोग जैनदर्शन के चार वेद हैं-प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग। ये चारों ही अनुयोग अपने-अपने विषय में पूर्ण हैं। इन चारों ही अनुयोगों में 12 अंग 14 पूर्व रूप वर्णन रहता है। दिगम्बर आम्नाय में, वर्तमान में द्वादशांग का अंश तो अभी विद्यमान है परन्तु पूर्ण रूपेण नहीं। कालदोष से श्रुतधारियों का विच्छेद मानते हैं। बल्कि श्वेताम्बर आम्नाय ने अभी 12 अंग स्वीकार किये हैं, जो कि संकलित हैं। जो कुछ मूलवाणी से मृदुता रखते हैं, दिगम्बर इन्हें स्वीकार नहीं करते, उनका सोचना वर्तमान में श्रुत द्वादशांग रूप नहीं, अंश मात्र ही है,जो कुछ श्वेताम्बर मानते हैं वह उनके स्वतंत्र विचार, आचार सम्बंधी प्रथा, कुछ सिद्धान्त में भी भेद हैं। दोनों पक्षों की उपासना विधि व साधना विधि भी पृथक है। पाँच सूत्रों को दोनों ही स्वीकारते हैं। अन्तिम सूत्र पर विशेष भेद है। दिगम्बर साधु नग्न रहते हैं, उनकी दृष्टि में तिल तुष मात्र परिग्रह अर्थात् एक धागा भी मुमुक्षु जीव के लिए मोक्ष प्राप्ति में बाधक कारण है। जबकि श्वेताम्बर मत वाले सवस्त्रधारी को मोक्ष स्वीकारते हैं। दिगम्बर स्त्रीमुक्ति, केवलीभुक्ति नहीं मानते जबकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय इसी बात को मूल सिद्धान्त स्वीकार कर बैठा है। दिगम्बरों में मूलतः कोई भेद नहीं है फिर भी काल दोष से वर्तमान में दो परंपराएँ अविसंवाद रूप से चल रही हैं। प्रथम बीस पंथ, द्वितीय तेरहपंथ। इन दोनों में आगम ग्रन्थ भिन्न नहीं हैं, सिद्धान्त, आचार सभी समान हैं, परन्तु उपासना विधि में अन्तर है। पूजन में बीसपंथी हरे फल-पुष्प का उपयोग करते हैं, पञ्चामृताभिषेक करते हैं। परन्तु तेरह पंथी सामान्य शुद्ध, प्रासुक जल से अभिषेक करते हैं, सचित्त फल-पुष्प का उपयोग नहीं करते। वर्तमान में दोनों परम्पराएँ अविसंवाद रूप से चल रही हैं, परस्पर वात्सल्य भाव है, अपनी-अपनी पद्धति से पूजन आदि करते हैं। दोनों ही परंपराओं के साधु संघ भी हैं परन्तु मूलोत्तर गुण दोनों के समान ही होते हैं। वैसे मेरी धारणा यह है पूजन विधि आदि श्रावकों की क्रियाएँ हैं, जहाँ जिस विधि से पूजापाठ चलता हो उसे चलने दिया जाय कोई क्रियाकाण्ड, कोई धर्म नहीं। परमार्थ भूत आत्मविशुद्धि हेतु परिणामों की निर्मलता के लिए, क्रियाकाण्ड रूप धर्म का पालन किया जाता है। अशुभ भावों से बचने के लिए जिसके माध्यम से सम्यक्त्व व चारित्र की हानि न होती हो, उस क्रिया को जैनाचार्यों ने स्वीकार किया है। यदि क्रियाकाण्डों में उलझकर निज परिणामों की विशुद्धि समाप्त होती हो तो वह क्रिया पुण्य बन्ध का भी कारण नहीं हो सकेगी। अतः श्रमणों की चर्या, श्रावकों से भिन्न है, श्रमणाचार्य को आचाराङ्ग में जो विधि कही गई है, उसी का पालन करना चाहिए, पंथ परंपराओं से दूर रहना चाहिए। साधु किसी भी पंथ का नहीं होता, वह तो प्रत्येक प्राणी मात्र के कल्याण की भावना रखता है फिर वह क्या विशेष बनकर रह सकता है ? निर्विकल्प आत्मसाधना में रत योगी का मात्र स्व-पर कल्याण की भावना के साथ मात्र सामान्यजनों से धर्मोपदेश आदि तक ही सम्बंध रहता है, विशेष धार्मिक अनुष्ठानों में आशीर्वाद मात्र देते हैं, संचालन से दूर रहते हैं। मठ, मंदिरों के विवाद व अन्य सामाजिक विवादों को आत्मध्यान में बाधक मानकर उन सब से पृथक् रहते हैं। ये जैन साधु की सामान्यतः चर्या रहती है। ध्यान-अध्ययन में रत रहते हैं। जैनदर्शन के..

चारवेद

1. प्रथमानुयोग - जिन आगमों में त्रेसठ शलाका महापुरुषों के चारित्र का चित्रण किया जाता है वे पुराण कहलाते हैं। एक पात्र विशेष का वर्णन किया जाता है वह चारित्र कहलाता है। चारित्र, पुराण, कथानक, इतिहास वर्णन प्रथमानुयोग में होता है। इसमें पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, आदिपुराण, उत्तरपुराण आदि ग्रन्थ आते हैं।

2. करणानुयोग - कर्म प्रकृतियों का, आत्मा के परिणामों का तथा लोक की ऊँचाई, लम्बाई, चौड़ाई आदि का वर्णन होता है, जिससे उसे करणानुयोग कहते हैं। इसे गणितानुयोग व लोकानुयोग भी कहते हैं। इस अनुयोग में त्रिलोकसार, तिलोयपण्णति, गोम्मटसार, जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लोकविभाग इत्यादि ग्रन्थ आते हैं।

3. चरणानुयोग - जिसमें श्रमण, श्रावक के आचार का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णन किया जाता है, संयम लेने की विधि, पालन व रक्षण की विधि का कथन किया जाता है। श्रमण के चारित्र का कथन करने वाले ग्रन्थों को आचाराङ्ग केअन्दर लिया है। श्रावकों के व्रतों का वर्णन करने वाले शास्त्रों को उपासकाध्ययन के अन्दर लिया गया है। चरणानुयोग के अनेक ग्रन्थ हैं, - मूलाचार, मूलाराधना (भगवती आराधना), आचारसार, श्रावकाचार, पुरुषार्थसिद्धि उपाय इत्यादि।

4. द्रव्यानुयोग - आत्म तत्त्व, जीव की शुद्धाशुद्ध पर्यायों का कथन, नौ पदार्थ, पञ्चास्तिकाय, छः द्रव्य, शुभ-अशुभ, शुद्ध भावों का निश्चय-व्यवहार नय से जो वर्णन करता है। इस प्रकार संक्षेप से जैनदर्शन का चारित्र पक्ष समझना। दर्शन पक्ष में जैनदर्शन अपनी विशेष योग्यता प्रकट करता है। रुढ़िवाद, अंधविश्वास का जैनदर्शन में कोई स्थान नहीं है। प्रत्येक बात तर्क, आगम पर कसी हुई को ही स्वीकारता है। बाबा वाक्य के अनुसार नहीं मानता, सबसे बड़ी बात, पर को अपना कर्त्ता तथा निज को पर का कर्त्ता जैनदर्शन किसी भी हालत में स्वीकार नहीं करता। अणु प्रमाण भी जीव उपादान रूप पर का कर्त्ता नहीं है निज भावों का कर्त्ता है, पद्गल कर्मों का भी कर्त्ता नहीं है। आत्मा चैतन्य जड़ है, तो फिर चैतन्य से जड़ धर्म कैसे किया जा सकता है। चैतन्य तो शुद्धाशुद्ध चैतन्य भावों का ही कर्त्ता है। व्यवहारनय से पुद्गल रूप कर्मों का कर्त्ता कहा है। अन्य रथ, घट,पट आदि का भी कर्त्ता कहा है, वह निमित्त रूप कर्त्ता समझना न कि उपादान रूप कर्त्ता। तात्पर्य यह हुआ, कर्म पौद्गलिक हैं, कार्मण वर्गणाएँ सम्पूर्ण लोक में घनत्व से ठसाठस भरी हुई हैं, उन्हें किसी ने तैयार नहीं किया। द्रव्य त्रैकालिक हुआ करता है, सत् रूप है, सत का कभी विनाश नहीं होता तथा असत् का कभी उत्पाद नहीं होता तो फिर कर्म को किसने बनाया है। अरे भाई, व्यवहार से कहा जाता है, बनाया है परन्तु द्रव्य स्व शक्ति से परिणमन करता है, उस परिणमन में कालादि द्रव्यों का निमित्त रहता है, कर्म जो बंधते हैं, वे कार्मण वर्गणाएँ जीव ने नहीं बनाई हैं, इस अपेक्षा से जीव कर्म का कर्त्ता नहीं है। जीव ने रागादिक भाव किये हैं उन भावों से कार्मण वर्गणाएँ कर्म रूप परिणत हुईं, इसलिये यह प्रकट है जीव तो रागादिक भावों का कर्त्ता है, कर्म का कर्त्ता नहीं। रागादिक भाव कार्मण वर्गणाओं को कर्म रूप परिणत कराते हैं न कि बनाते हैं। निष्पन्न रूप कर्त्ता जीव कर्म का नहीं है, कर्मबन्ध रूप कर्त्ता जीव ही है, बिना रागादिक भाव जीव के लिए कर्मबन्ध नहीं होता है। अतः सुख-दुःख का कर्त्ता, चारों गतियों में भ्रमण का कर्त्ता, संसार पर्याय, सिद्ध पर्याय का कर्त्ता जीव स्वयं ही है। यह सिद्धांत जैनदर्शन का मौलिक सिद्धान्त है। जैनदर्शन वेदवादी दर्शनों की भांति ईश्वर को कर्त्ता स्वीकार नहीं करता। यदि ईश्वर आदि पर के कर्त्ता हो जायेंगे तो फिर निज के शुभ-अशुभ कर्म व्यर्थ हो जायेंगे। अतः स्पष्ट है जैनदर्शन आत्मपुरुषार्थवादी दर्शन है, निज आत्मा ही सम्यक् पुरुषार्थ करके परमात्म अवस्था को प्राप्त होती है।

बोध कथा

गड़रिये की भक्ति

एक पंडित जी बड़े धर्मात्मा थे। प्रातः भोर में ही नदी में डुबकी लगाते और पूर्व की ओर मुँह करके खड़े होकर प्रतिदिन नदी के किनारे जल देते थे। पश्चात् नदी में गोता लगाकर नदी से बाहर निकल आते थे।

एक गड़रिया जो रोज उन्हें ऐसा करते हुए देखता था, एक दिन उसने पंडित जी से पूछा-महाराज! यह गोता क्यों लगाते हो पानी में? पंडित जी बोले तू क्या जाने गड़रिये। 'ऐसा करने से भगवान् के दर्शन होते हैं।' अचरज में पड़ गया और मन ही मन बोला- भगवान् के दर्शन, ओह! आपका जीवन धन्य है। मैं भी करके देखूँगा और इतना कहकर गड़रिया चला गया।

दूसरे दिन पंडित जी के आने से पहिले वह गड़रिया आया और नदी में कूद गया तथा डूबा रहा कुछ देर पानी में। देवता उसकी भक्ति और विश्वास पर प्रसन्न हुए। वे उसे दर्शन देने आ गये। उन्होंने कहा-मांग वरदान, क्या माँगता है? गड़रिया आनन्द से भरकर बोला - 'दर्शन हो गये प्रभु के अब कोई माँग नहीं।' प्रभु के दर्शन के बाद कोई माँग शेष नहीं रहती।

आशय यह है कि भक्ति और विश्वास के साथ ऐसे ही अपने अन्दर गहरे उतरना होगा तभी आत्मा का दर्शन होगा। भक्ति के लिए चाहिए विश्वास, समर्पण और निष्कामवृत्ति। जो गहराई में गोता लगाते हैं। वे भक्त शारीरिक कष्टों से नहीं डरते।

'विद्या-कथाकुञ्ज'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

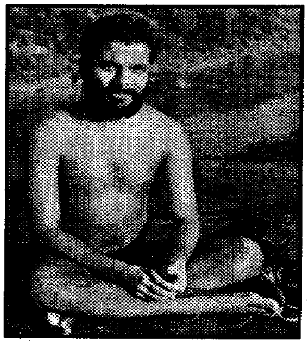

मानवीय मूल्यों के लिये समर्पित युगश्रेष्ठ संत मुनिश्री प्रमाण सागर जी

सौरभ 'सजग'

मानव शरीर धारण करना एक बात है जबकि मानव जीवन को मानवीय गुणों से परिपूर्ण कर जीवन जीना दूसरी बात है। मानवीय गुणों से परिपूर्ण हो जीवन जीने वाले मानव महापुरुष कीश्रेणी में आते हैं। अनादिकाल से ही ऐसे जीवंत महापुरुषों की एक समृद्ध और अविच्छिन्न परम्परा रही है। इसी परम्परा में संत शिरोमणी आचार्य गुरुवर श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य मुनि श्री 108 प्रमाण सागर जी महाराज भी स्वपर कल्याणरत एक ऐसे ही महापुरुष हैं।

भारत-भू पर शांति सुधारस की वर्षा करने वाले, भौतिक कोलाहलों से दूर, जगत मोहनी से असंपृक्त, अद्भुत ज्ञान के सागर, आगम के प्रकाण्ड विद्वान, काव्य प्रतिभा के पयोनिधि, परम तपस्वी संत शिरोमणि आचार्य गुरुवर श्री 108 विद्यासागर जी महाराज के अनेकों शिष्य रत्नों में मुनि श्री प्रमाण सागर जी महाराज का अपना एक विशिष्ट स्थान है।

आचार्य श्री द्वारा मुनि श्री जैसे अनेक मुनि रत्नों को तैयार करने से एक महान् लोकोपकारी कार्य हुआ है। मुनि श्री अपने गुरु आचार्य श्री की तरह ही किसी एक धर्म के नहीं हैं, बल्कि विभिन्न धर्मों के हैं। विभिन्न धर्मों के अनुयायियों को उनके दर्शन, प्रवचन, सान्निध्य से आनंद की अनुभूति होती है।

परम पूज्य मुनि श्री 108 प्रमाण सागर जी महाराज वर्तमान युग के एक युवा दृष्टा, क्रांतिकारी विचारक, आगमविद्, जीवन सर्जक, श्रमण संस्कृति के शुभ दर्पण, प्राणी मात्र के हित चिन्तक, उत्कृष्ट मुनि, तेजस्वी वक्ता, प्रखर चिंतक, जिनधर्म की चहुँओर पताका फहराने वाले, अपने गुरू के प्रति समर्पित श्रेष्ठ संत हैं। मात्र 21 वर्ष की अवस्था में मुनि दीक्षा प्राप्त कर आत्मसाधना में निरत प्रतिभावान निर्ग्रन्थ साधु हैं।

मुनि श्री में समाहित गुणों को पूरी तरह से प्रकट करना कभी संभव नहीं है क्योंकि वे गुणों के सागर हैं, उनकी वाणी जिनवाणी का प्रतिनिधित्व करती है, उनकी चर्या भगवान् महावीर के युग को जीवित करती है, उनका चिंतन मौलिक है, उनकी लेखनी अद्वितीय है, उनकी वार्ता अलौकिक है, उनके विचारों में सर्वहितैषिता है, क्षमा और समता की वे जीवित मूर्ति हैं, निर्मलता और निर्भयता के वे स्वतंत्र झरने हैं।

मुनि श्री विलक्षण एवं अद्वितीय प्रतिभाओं के धनी हैं। उनकी लेखनी ने एक ओर जहाँ जीवन की दिव्यता का भव्य अंकन किया है वहीं दूसरी ओर उनके जीवन ने जगत् को असीम करूणा और स्नेह का उपहार प्रदान किया है। आपके विलक्षण ज्ञान, अप्रतिम वैराग्य, अभूतपूर्व तप एवं जीवमात्र के प्रति समता का भाव देख कोई भी आपसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता है।

आपने अपनी साधना के माध्यम से विद्या, बुद्धि, अहिंसा, करूणा, अपरिग्रह, विवेक, क्षमा, तपस्या, सत्य, शुद्धता, संयम, सेवा और अनुभव का संपोषण किया है। आत्म कल्याण और परकल्याण की भावना से ओत-प्रोत आपकी साधना देख लोगों में भी आत्मकल्याण की भावना प्रस्फुटित होती है। आपकी अनवरत कठोर साधना श्रद्धालुओं को भाव विह्वल कर श्रद्धा, विश्वास और आस्था से परिपूर्ण बना देती है जिससे वह स्वयमेव श्रीचरणों में समर्पित हो अपने जीवन के रूपान्तरण को उद्घाटित कर देता है।

आपके दर्शन प्राप्त कर लोगों में उत्साह का संचार होता है। संसार की कठिनाई और भयों से अक्रांत मानव आपके दर्शन मात्र से अपने अन्दर उन सभी से जूझने की शक्ति क्षण भर में उत्पन्न कर लेता है। आपके दर्शन पाकर श्रद्धालु महसूस करते हैं कि उनकी सारी समस्याओं का उन्हें मूक समाधान प्राप्त हो गया है। जीवन से निराश लोग आपका थोड़ा सा सान्निध्य पा अपनी शून्य से शिखर यात्रा को उद्घाटित कर देते हैं।

आप अपने आत्मानुशासन द्वारा अपने शिष्य रूपी शिशुओं में सत्संस्कार की स्थापना कर उन्हें मुक्त गगन में विचरण योग्य बनाते हैं। अपने शिष्यों पर हमेशा उपकारी दृष्टि रख उनके जीवन की विकास यात्रा में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं, अपने करीब आने वाले हर वय के लोगों में धर्म का संचार करते हैं, उन्हें आत्मकल्याण हेतु दिशा बोध कराकर विवेकशील जीवन जीने हेतु प्रेरित करते हैं।

आपकी वाणी में अद्भुत आकर्षण, ओज और मधुरता है। आपकी ओजस्वी वाणी सरल, सुबोध, स्वच्छ, निर्मल, निश्चल, मर्मस्पर्शी, हृदय को छूने वाली है और श्रोता के हृदय पर एक चिरस्थायी प्रभाव डालती है। आपके प्रवचनों में अपूर्व गाम्भीर्य और अद्भुत शक्ति है। अपनी ओजस्वी, दिव्य एवं प्रेरणास्पद वाणी द्वारा आप न सिर्फ धर्म और दर्शन के गूढ़ सिद्धांतों को श्रोताओं के मन मस्तिष्क में उकेरते हैं, बल्कि उसके अनुरूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन यापन करने की प्रेरणा उत्पन्न करते हैं। अपने प्रवचनों के माध्यम से आप गृहस्थ को सद्गृहस्थ बनने की प्रेरणा देते हैं।

आप अपने नि:स्वार्थ जीवन द्वारा अपने ज्ञान का ठीक वैसे ही प्रकाश बिखेर रहे हैं जैसे सूर्य और चन्द्रमा बिना अपेक्षा के, बिना भेदभाव के सभी को अपना प्रकाश और ज्योत्सना सहज रूप से प्रदान करते हैं। आपके ज्ञान गाम्भीर्य का ही ये परिणाम है कि अच्छे से अच्छे विद्वान भी अपनी गंभीर से गंभीर तात्विक समस्याओं का समाधान क्षण भर में प्राप्त कर लेते हैं। अध्यात्म, दर्शन, धर्म, संस्कृति, इतिहास, साहित्य, न्याय, व्याकरण, मनोविज्ञान, वास्तुविद्या इत्यादि में अनुपम ज्ञान आपकी विशिष्टता है। साहित्यजगत में आप हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, प्राकृत भाषाओं के अग्रणी विद्वान के रूप में जाने जाते हैं।

मुनि श्री की लेखनी से उद्धत "जैन धर्म और दर्शन" आधुनिक शैली में लिखा शास्त्रतुल्य ग्रंथ है। इस ग्रंथ के माध्यम से उन्होंने धर्म और दर्शन जैसे गूढ़ विषय को भाषागत जटिलता से मुक्त कर वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया है। यह ग्रंथ वर्तमान समय के एक बड़े अभाव की पूर्ति करने के साथ ही दीप स्तम्भ का कार्य कर रहा है। इसमें आपने क्लिष्ट से क्लिष्ट जैन दर्शन की गूढ़ताओं और जटिलताओं को सरल बनाकर अबाल बृद्ध को परिचय कराकर अपनी असाधारण प्रतिभा का प्रमाण दिया है।

"जैन तत्त्वविद्या" आपकी एक और लोकोपकारी कृति है जो जैनागम के सर्वोन्मुखी-विद्याओं को अपने आप में समाहित किये हैं। यह आपके चिंतन की सृजनशीलता ओर निर्ग्रन्थ-श्रेयस साधना का ही फल है कि केवल इस एक ग्रंथ के अनुशीलन से जैन तत्त्वविद्या की सभी शाखाओं के उच्च स्तरीय ज्ञान में प्रवीणता प्राप्त हो जाती है। इन्हीं कारणों से उनकी यह महान् कृति सहज ही जैन धर्म की एनसाईक्लोपीडिया कहलाने लगी है।

"दिव्य जीवन का द्वार" मुनि श्री द्वारा समय-समय पर दिये प्रवचनों का संकलन है। इन प्रवचनों में सर्व-धर्म समभाव निहित है। इन प्रवचनों द्वारा मुनिश्री ने मानव मात्र को एक आदर्श नैतिक वातावरण के द्वारा धार्मिक धरातल का ज्ञान कराया है। आपके इस प्रवचन संग्रह के माध्यम से मानव को मानवता का परिचय प्राप्त कर नैतिकता अपनाने का संकेत मिलता है। जीवन उद्धार की दिशा में आपके प्रवचनों के शब्द लोगों के प्रेरणा स्रोत बन जाते हैं।

"अंतस् की आँखें" एक अन्य प्रवचन संग्रह है जिसमें मुनिश्री ने धार्मिक और धर्मात्मा के भेद को उजागर किया है। उनका कहना है कि धार्मिक वह है जो धार्मिक क्रियाओं के साथ जीवन व्यतीत करता है, जबकि धर्मात्मा वह है जो धर्म को अपनी आत्मा, अपने जीवन में अपना लेता है। धार्मिक व्यक्ति का धर्म धार्मिक क्रियाओं के साथ थोड़ी ही देर में विलुप्त हो जाता है, जबकि धर्मात्मा का धर्म हमेशा उसके आचरण, विचार और व्यवहार में प्रतिबिम्बत होता है। अपने प्रवचनों के माध्यम से जन सामान्य को वे धार्मिक से धर्मात्मा बनने के उपायों के साथ ही साथ धर्मात्मा बनने की मधुर प्रेरणा भी देते हैं।

जैन विद्या को व्यवस्थित पाठ योजना के माध्यम से समझाने हेतु मुनि श्री द्वारा "जैन सिद्धांत शिक्षण" नामक कृति का सृजन हुआ है। इसमें आपके द्वारा सिद्धांतों को सरल और सूक्ष्म रूप में वर्णित किया गया है यह कृति जगह-जगह आयोजित होने वाले शिक्षण शिविरों में सिद्धांत आधारित पाठ्य सामग्री के अभाव को पूरा करती है। इस कृति के द्वारा न सिर्फ स्वाध्याय की एक नई शैली का विकास हुआ है, अपितु आध्यात्मिक, आचारनिष्ठ और जिज्ञासु व्यक्तिओं का निर्माण हुआ है।

"धर्म जीवन का आधार" मुनि श्री की एक ऐसी कृति है जिसके अनुशीलन से धर्म के दशलक्षणों का स्वरूप सरलता से हृदयंगम हो जाता है, हालांकि दशधर्मों के स्वरूप को समझाते हुए पूर्व में कई कृतियों का सृजन हुआ है, किन्तु प्रस्तुत कृति अपने अभिव्यक्ति कौशल के कारण उन सभी से अलग श्रोताओं पर विशिष्ट प्रभाव छोड़ धर्म को जीवन व्यवहार में उतारने की प्रबल प्रेरणा देने में सफल रही है।

आपकी कृति "ज्योतिर्मय जीवन" विभिन्न प्रवचनों के रूप में मनुष्य की चेतना को ज्योतिर्मय बनाने का सशक्त माध्यम बनकर "तमसो मा ज्योतिर्गमय की उक्ति को चरितार्थ कर रही है।"

आपके पावन सान्निध्य, आशीर्वाद और प्रेरणा से स्थान-स्थान पर अनेक शुभ सामाजिक और धार्मिक कार्य होते रहते हैं। कई स्थानों पर सानंद सम्पन्न गजरथ एवं पंचकल्याणक महोत्सव आपके कुशल निर्देशन की सफलता का प्रमाण देते हैं। गाँवों-शहरों में स्थापित अनेक गौशालाओं और पशु संरक्षण गृह आपकी प्राणी मात्र के प्रति करूणा का प्रमाण दे रही हैं। आपके आशीर्वाद से आयोजित शिक्षण शिविरों में लाभान्वित हजारों लोग आपकी तत्वान्वेषी मानसिकता का स्पष्ट प्रमाण दे रहे हैं।

मुनि श्री में समाहित गुणों को पूरी तरह से प्रकट करना कभी भी संभव नहीं है कारण वे अनंत गुणों से परिपूर्ण हैं। इस आलेख के माध्यम से मैंने सूरज को दीपक दिखाने जैसा लघु कार्य किया है, वास्तव में वे नित-नूतन-नवीन हैं, उनके गुणों को ध्यान में रखकर जितना लिखा जाए कम है।

अपने आलेख को यहीं पर विराम देते हुए मैं परम पिता से करबद्ध प्रार्थना करता हूँ कि मुनि श्री स्वस्थ और दीर्घायु होवें ताकि उनके मंगल सान्निध्य में सृष्टि के जीव अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से जीवन की ओर, विष से अमृत की ओर, घृणा से प्रेम की ओर, अधर्म से धर्म की ओर जाने की कला सीख सकें और सुखद भविष्य का निर्माण कर सकें। ऐसे महान् संत के चरणों में बारम्बार नमन्।

ई- 21, जवाहर पार्क
लक्ष्मी नगर, दिल्ली - 92

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिनबिंब प्रतिष्ठा में सूरि मंत्र का महत्त्व

पं. नाथूलाल जैन शास्त्री

पं. रतनलाल जी बैनाड़ा ने पत्र द्वारा पूछा है कि सूरिमंत्र कौन दे सकता है ? इसका स्पष्टीकरण निम्नलिखित लेख में किया जा रहा है।

प्रमाण यहाँ प्राचीनता के क्रम से दिये जा रहे हैं-

1. आचार्य वसुनंदि के प्रतिष्ठा पाठ श्लोक 8-9 में -

आचारादि गुणाधारो, रागद्वेष विवर्जितः।
पक्षपातोज्झितः शांतः, साधुवर्गा ग्रणी गणी॥ 8॥
अशेष शास्त्र विच्चक्षुः, प्रव्यक्तं लौकिक स्थितिः।
गंभीरो मृदुभाषी च, स सूरिः परिकीर्तितः॥ 9॥

2. प्रतिष्ठा सारोद्धार (श्री आशाधर कृत) श्लोक 117 में-

ऐदं युगीन श्रुतधर, धुरीणो गणपालकः।
पंचाचार परो दीक्षा-प्रवेशाय तयोर्गुरुः॥

3. आचार्य जयसेन प्रतिष्ठा पाठ श्लोक 234 से 249 में -

प्रात गृहीत्वा गुरु पूजनार्थ, वादित्रनादोल्वणयात्रया सः।
गुरूप कंठे नत मस्तकेन, भूमिं स्पृान् वाक्य मुपाचरेत् सत्॥
इत्याद्यभिप्राय वशादुदीर्य व्रतगृहः सद्गुरुणोपदेश्यः।
मंत्रेण बद्धांजलि मस्तकाभ्यां यज्वेन्द्रकाभ्यामपरैर्विधार्यः॥

4. श्री नेमीचन्द्र देव प्रतिष्ठा पाठ (दक्षिण में प्रचलित) 17-20 श्लोक में-

चैत्यादि भक्तिभिः स्तुत्वा देवंशेषं समुद्वहन्।
धर्माचार्यं समभ्यर्च्य नत्वा विज्ञापयेदिदम्॥
त्वत्प्रसादात् प्रबुध्यार्हत्पूजादेर्लक्षणं स्फुटम्।
जिन प्रतिष्ठामिच्छामः कर्तुमेतेऽद्य बालिशाः॥

उक्त चार प्रतिष्ठा पाठ वर्तमान में प्रचलित हैं। इनके प्रारंभिक श्लोकों में प्रतिष्ठा हेतु सूरि या दि. गुरु का आशीर्वाद व आज्ञा ली जाती है। उनके उपदेशानुसार याजक, इन्द्र-प्रतिष्ठाचार्य कार्य करते हैं। इनमें जो सूरि शब्द है, वह दि. आचार्य या साधु का है। प्रतिष्ठा के धर्माचार्य दि. साधु होते हैं।

सूरिमंत्र से सूरि द्वारा दिया गया मंत्र यह अर्थ निकलता है। जयसेन प्रतिष्ठा पाठ में अधिवासना मंत्र संस्कार के समय से अष्ट द्रव्य से प्रतिमा की पूजा की जाती है।

यह पं. मिलापचन्द्र जी कटारिया ने भी अपनी जैन निबंध रत्नावली पृष्ठ 72 में जयसेन प्रतिष्ठा पाठ की समालोचना में लिखा है। वही आशाधर प्रतिष्ठा पाठ पत्र 108 में तिलक दान के बाद याने अधिवासना के साथ अन्य मंत्रों के समय प्रतिमा को नमस्कार करना बतलाया है। इसी समय जयसेन प्रतिष्ठा पाठ पृष्ठ 282 में-

अधिवासनां निष्ठाप्य सर्वान् जनानपसृत्य
दिगम्बरत्वावगत आचार्यः स्वस्तययनं पठेत्।

अर्थात् अधिवासना पूरी कर वहाँ उपस्थित सर्म्पूण लोगों को अलगकर (यद्यपि वहाँ दो पर्दे लगे रहते हैं, जहाँ मुख वस्त्र याने प्रतिमा के आगे लगा हुआ पर्दा उठाया जाता है, दूसरा पर्दा वहाँ रहता ही है) दिगम्बरत्व रूप में प्रतिष्ठाशास्त्र के पूर्व श्लोकों में जो यहाँ दिये गये हैं, उनके अनुसार अवगत याने पूर्व जाने हुए सूरि अथवा सद्गुरु दिगम्बराचार्य स्वस्त्ययन विधि पढ़ें। पश्चात् श्रीमुखोद्घाटन, प्राण-प्रतिष्ठा, सूरि-मंत्र और अंतिम तपकल्याणक के अन्तर्गत और ज्ञानकल्याणक से पूर्व नेत्रोन्मीलन विधि यही सूरि याने दिगम्बराचार्य देते हैं। यही सप्तम गुण स्थान से 12 वें गुण स्थान तक की विधि है। यही द्वितीय शुक्ल ध्यान के उपांत्य समय दि. मुनि (प्रतिमा) को अर्घ दिया गया है।

उक्त दिगम्बरत्वावगत शब्द को लेकर ही विवाद हो सकता है। इसी पर से कहा जाता है कि प्रतिष्ठाचार्य दिगम्बर होकर सूरिमंत्र दे सकता है। इसके समाधान में हमें यह जानना है कि, अधिवासना के साथ की विधि से जो प्रतिमा में पूज्यता आती है वह क्यों ? वह इसलिये कि प्रतिमा में सातवें गुण स्थान की वीतरागता की विधि से पूज्यपना आता है। यहीं प्रतिष्ठा शास्त्र में प्राण प्रतिष्ठा के साथ सूरि मंत्र दिया जाता है, जो वीतराग दिगम्बरत्व की दीक्षा है, और गुप्त रुप में दिया जाता है। इसलिये यहाँ पर इसका उल्लेख प्रतिष्ठा शास्त्र में नहीं मिलता, यह गुरु मंत्र है। यहाँ **गुप्तं भाष्यंते इति मंत्रः** जो गुप्त रुप में कहा जाता है वह मंत्र कहलाता है।

दिगम्बर वीतराग मुनि की दीक्षा (मंत्र संस्कार) दिगम्बर मुनि (सूरि) जो आचार्य कहलाता है वही दे सकता है। कोई गृहस्थ चाहे वह नग्न भी हो जाये तो क्या वह मुनि दीक्षा देता है ? यह सभी जानते हैं। इसका संकेत जयसेन प्रतिष्ठा पाठ श्लोक 378-379 में है जो आचार्य (दिगम्बर) द्वारा किया जाता है।

उक्त स्पष्टीकरण को समझकर अब ऊपर **दिगंबरत्वावगत** शब्द है उसका सही अर्थ दिगंबरत्व से ज्ञात जो पूर्व आचार्य वह स्वस्ति पाठ और जो यहाँ नहीं लिखे हैं ऐसे प्राण प्रतिष्ठा, सूरिमंत्र आदि देते है। यहां प्रतिष्ठाचार्य का काम नहीं है। किन्तु पूर्व दि.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुरु सूरि आचार्य का काम है जिनके आशीर्वाद व आज्ञा से प्रतिष्ठा हो रही है। दिगंबरत्व रुपेण अवगत शब्द के अर्थ को जानना चाहिए। यहाँ दिगंबर होकर काम करे यह अर्थ नहीं निकलता। इसलिये इस ग्रंथ में अर्थ भी नहीं लिखा। साथ ही **जनान पसृन्य** लोगों को हटाकर इस शब्द से प्रतिष्ठाचार्य दिगम्बर हो रहे है, इसलिये उनके सामने सब नहीं रह सकते, यह मतलब भी नहीं निकालना चाहिये, क्योंकि गुप्त, विशिष्ट मंत्र गुरु एकांत में ही देते है। ये दो पर्दे भी वहाँ लगे रहते हैं।

इन सब गहराइयों को नहीं जानकर केवल ऊपर से ही दिगम्बर होकर गृहस्थाचार्य सूरि मंत्र दे सकता है यह बताया जा रहा है। प्रतिष्ठा पाठ में सूरि मंत्र का उल्लेख तक नहीं। प्राण प्रतिष्ठा से मतलब मूर्ति में दिव्यता अपूर्वता लाना है।

आहार दान प्रतिष्ठा शास्त्र में नहीं है, इसलिये पहले जो पूजा की जाती है वह विपरीत विधिं है। माता पिता (नाभिराय मरुदेवी) एक भवावतारी मलमूत्र रहित शरीर वाले महान् व्यक्ति हैं, उनका व तीर्थंकर का पार्ट नहीं किया जाना चाहिये। पूज्य आचार्य श्री शांति सागर जी (दक्षिण) एवं श्री पं. मक्खनलालजी शास्त्री मुरैना ने गजपंथा प्रतिष्ठा में विरोध किया था। मैंने भी अपने प्रतिष्ठा ग्रंथ में जो सूरि मंत्र व प्राण प्रतिष्ठा मंत्र लिखे हैं वे गुरु मंत्र होने से गुप्त रहने चाहिये थे, किंतु हम देख रहे हैं कि साधारण प्रतिष्ठाचार्य भी प्रतिष्ठा करा रहे हैं। और णमोकार मंत्र से सब काम करा रहे हैं, तो उन्हें प्रतिष्ठा का महत्व बतलाना आवश्यक हो गया।

वर्तमान कुछ सदोष मुनियों से तो गृहस्थ अच्छे हैं, सूरि मंत्र बाबत **धर्म मंगल** में प्रकाशन इसी दृष्टि से भी कराया गया होगा। किन्तु निर्दोष मुनि से ही सूरि मंत्र दिलाया जाना चाहिये। गृहस्थाचार्य मंत्र दे रहे हैं यह सर्वथा अनुचित है।

मेरे प्रतिष्ठा प्रदीप द्वितीय संस्करण में सूरि मंत्र गृहस्थ दे सकता है, यह नहीं है। ब्र. शीतलप्रसाद जी के प्रतिष्ठा पाठ में शास्त्र और लोक विरुद्ध अनेक कथन हैं, जो केवल नाटकीय रुप में मनोरंजन हेतु प्रकाशित हुए हैं। पहले यही उपलब्ध था, जिसका उपयोग हम लोगों ने भी किया था। पीछे प्रतिष्ठा शास्त्र के अध्ययन से कुछ ज्ञात हुआ। 33 वर्ष से प्रतिष्ठा कार्य छोड़ने पर भी परामर्श तो देना ही पड़ता है। आज भी प्रतिष्ठाचार्य मूर्ति के मुख पर धान सहित वस्त्र लपेटते हैं। बाहु में नाड़ा बाँध देते हैं और मूर्ति को तिलक लगाते हैं। यह तपकल्याणक में करते हैं। कई बोलियाँ अनुचित होने लगी हैं। यह सब संस्कृत भाषा व मुख वस्त्र आदि शब्दों का ठीक अर्थ न समझने का परिणाम है।

जयसेन प्रतिष्ठा पाठ पद्य 50 में सद्‌गुरु की पूजा कर "करीत्स्यंदनयान वाह्यं नयेत्" का अर्थ है हाथी, रथ, यान, वाहन में बैठने योग्य (प्रतिष्ठाचार्य आदि) को मण्डप में ले जावे किन्तु इसका सद्‌गुरु को ले जावे यह गलत अर्थ किया जा रहा है।

पूर्व प्राचार्य - सर हुकमचन्द संस्कृत महाविद्यालय
40, हुकुमचंद मार्ग, मोतीमहल, इन्दौर

आचार्य श्री विद्यासागर के सुभाषित

- **जिस प्रकार नवनीत दूध का सारभूत रूप है, वैसे ही करणलब्धि सब लब्धियों का सार है।**
- **प्रत्येक व्यक्ति के पास अपना-अपना पाप-पुण्य है, अपने द्वारा किये हुये कर्म है। कर्मों के अनुरूप ही सारा का सारा संसार चल रहा है किसी अन्य बलबूते पर नहीं।**
- **प्रत्येक पदार्थ का अस्तित्व अलग-अलग है और सब स्वाधीन स्वतंत्र है। उस स्वाधीन अस्तित्व पर हमारा कोई अधिकार नहीं जम सकता।**
- **फोटो उतारते समय हमारे जैसे हाव-भाव होते हैं वैसा ही चित्र आता है, इसी तरह हमारे परिणामों के अनुसार ही कर्मास्रव होता है।**
- **देव शास्त्र गुरु कहते ही सर्वज्ञता की ओर दृष्टि न जाकर प्रथम वीतरागता की ओर दृष्टि जानी चाहिये क्योंकि वीतरागता से ही सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है।**
- **कार्य हो जाने पर कारण की कोई कीमत नहीं रह जाती लेकिन कार्य के पूर्व कारण की उतनी ही कीमत है जितनी कार्य की।**
- **साध्य के बारे में दुनिया में कभी विसंवाद नहीं होते, विसंवाद होते हैं मात्र साधन में। मंजिल में विसंवाद कभी नहीं होता, विसंवाद होता है मात्र पथ में।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योगसार-प्राभृत में वर्णित भवाभिनन्दी मुनि

प्रस्तुति : पं. रतनलाल बैनाड़ा

आचार्य अमित गति ने योगसार प्राभृत में कहा है-

नास्ति येषामयं तत्र भवबीज - वियोगतः।
तेऽपि धन्या महात्मान: कल्याण फल-भागिन: ॥ 24 ॥

'जिनके भवबीजका - मिथ्यादर्शनका-वियोग हो जाने से मुक्ति में यह द्वेषभाव नहीं है वे महात्मा भी धन्य हैं - प्रशंसनीय हैं- और कल्याणरूप फलके भागी हैं।'

व्याख्या - यहाँ उन महात्माओं का उल्लेख है और उन्हें धन्य तथा कल्याणफलका भागी बतलाया है जो भुक्ति में द्वेषभाव नहीं रखते, और द्वेषभाव न रखने का कारण भवबीज जो मिथ्यादर्शन उसका उनके वियोग सूचित किया है।

नि:सन्देह संसार का मूल कारण 'मिथ्यादर्शन' है, मिथ्यादर्शन के सम्बन्ध से ज्ञान मिथ्याज्ञान और चारित्र मिथ्याचारित्र होता है, तीनों का भवपद्धति-संसार मार्ग के रूप में उल्लेखित किया जाता है, जो कि मुक्तिमार्ग के विपरीत है[1]। यह दृष्टिविकार ही वस्तु तत्त्व को उसके असली रूप में देखने नहीं देता, इसी से जो अभिनन्दनीय नहीं है उसका तो अभिनन्दन किया जाता है और जो अभिनन्दनीय है उससे द्वेष रखा जाता है। इस पद्य में जिन्हें धन्य, महात्मा और कल्याण फल भागी बतलाया है उनमें अविरत-सम्यग्दृष्टि तक का समावेश है।

स्वामी समन्तभद्र ने सम्यग्दर्शन से सम्पन्न चाण्डाल-पुत्रको भी 'देव' लिखा है- आराध्य बतलाया है, और श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट को भ्रष्ट ही निर्दिष्ट किया है, उसे निर्वाणकी[2]-सिद्धि, मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती।

इस सब कथन से यह साफ फलित होता है कि मुक्तिद्वेषी मिथ्यादृष्टि भवाभिनन्दी मुनियों की अपेक्षा देशव्रती श्रावक और अविरत-सम्यग्दृष्टि गृहस्थ तक धन्य हैं, प्रशंसनीय हैं तथा कल्याण के भागी हैं। स्वामी समन्तभद्र ने ऐसे ही सम्यग्दर्शन सम्पन्न सद्‌गृहस्थों के विषय में लिखा है-

गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो, नैव मोहवान्।
अनगारो, गृही श्रेयान् निर्मोहो, मोहिनो मुने: ॥

'मोह (मिथ्यादर्शन) रहित गृहस्थ मोक्षमार्गी है। मोहसहित (मिथ्या-दर्शन-युक्त) मुनि मोक्षमार्गी नहीं है। (और इसलिए) मोही-मिथ्यादृष्टिमुनि से निर्मोही-सम्यग्दृष्टि गृहस्थ श्रेष्ठ है।'

इससे यह स्पष्ट होता है कि मुनिमात्रका दर्जा गृहस्थ से ऊँचा नहीं है, मुनियों में मोही और निर्मोही दो प्रकार के मुनि होते हैं। मोही मुनि से निर्मोही गृहस्थ का दर्जा ऊँचा है- यह उससे श्रेष्ठ है। इसमें मैं इतना और जोड़ देना चाहता हूँ कि अविवेकी मुनि से विवेकी गृहस्थ भी श्रेष्ठ है और इसलिए उसका दर्जा अविवेकी मुनि से ऊँचा है।

जो भवाभिनन्दीमुनि मुक्ति से अन्तरंग में द्वेष रखते हैं वे जैन मुनि अथवा श्रमण कैसे हो सकते हैं? नहीं हो सकते। जैन मुनियों का तो प्रधान लक्ष्य ही मुक्ति प्राप्त करना होता है। उसी लक्ष्य को लेकर जिनमुद्रा धारण की सार्थकता मानी गयी है। यदि वह लक्ष्य नहीं तो जैन मुनिपना भी नहीं, जो मुनि उस लक्ष्य से भ्रष्ट हैं उन्हें जैनमुनि नहीं कह सकते- वे भेषी ढोंगी मुनि अथवा श्रमणाभास हैं।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रवचनसार के तृतीय चारित्राधिकार में ऐसे मुनियों को 'लौकिक मुनि' तथा 'लौकिकजन' लिखा है। लौकिकमुनि लक्षणात्मक उनकी वह गाथा इस प्रकार है-

णिग्गंथो पव्वइदो वट्टदि जदि एहिगेहि कम्मेहि।
सो लोगिगो त्ति भणिदो संजम-तव-संजुदो चावि ॥ 69 ॥

इस गाथा में बतलाया है कि 'जो निर्ग्रन्थरूप से प्रव्रजित हुआ है- जिसने निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैन मुनिकी दीक्षा धारण की है- वह यदि इस लोक सम्बन्धी सांसारिक दुनियादारी के कार्यों में प्रवृत्त होता है तो तप-संयम से युक्त होते हुए भी उसे 'लौकिक' कहा गया है।' वह पारमार्थिक मुनि न होकर एक प्रकार का सांसारिक दुनियादार प्राणी है। उसके लौकिक कार्यों में प्रवर्तनका आशय मुनि पद को आजीविका का साधन बनाना, ख्याति-लाभ-पूजादि के लिए सब कुछ क्रियाकाण्ड करना, वैद्यक-ज्योतिष-मंत्र-तन्त्रादिका व्यापार करना, पैसा बटोरना, लोगों के झगड़े टण्टे में फँसना, पार्टी बन्दी करना, साम्प्रदायिकता को उभारना और दूसरे ऐसे कृत्य करने जैसा हो सकता है जो समता में बाधक अथवा योगीजनों के योग्य न हो।

एक महत्त्व की बात इससे पूर्वकी गाथा में आचार्य महोदय ने और कही है और वह यह है कि 'जिसने आगम और उसके द्वारा प्रतिपादित जीवादि पदार्थों का निश्चय कर लिया है, कषायों को शान्त किया है और जो तपस्या में भी बढ़ा-चढ़ा है, ऐसा मुनि भी यदि लौकिक मुनियों तथा लौकिक जनों का संसर्ग नहीं त्यागता तो वह संयमी मुनि नहीं होता अथवा नहीं रह पाता है- संसर्ग के दोष से, अग्नि के संसर्ग से जल की तरह, अवश्य ही विकारको प्राप्त हो जाता है:-

णिच्छिदसुत्तत्थपदो समिदकसाओ तवोधिगो चावि।
लोगिगजन संसग्गं ण चयदि जदि संजदो ण हवदि ॥ 68 ॥

इससे लौकिक-मुनि ही नहीं किन्तु लौकिक-मुनियों की अथवा लौकिक जनों की संगति न छोड़ने वाले भी जैन मुनि नहीं होते, इतना और स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि इन सबकी प्रवृत्ति प्राय:

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लौकिकी होती है, जबकि जैन मुनियों की प्रवृत्ति लौकिकी न होकर अलौकिकी हुआ करती है, जैसा कि श्री अमृतचन्द्राचार्य के निम्न वाक्य से प्रकट है:-

अनुसरतां पदमेतत् करम्बिताचार-नित्य निरभिमुखा।
एकान्त विरतिरूपा भवति मुनीनामलौकिकी वृत्तिः ॥ 13 ॥

पुरुषार्थसिद्धयुपाय

इसमें अलौकिकी वृत्ति के दो विशेषण दिये गये हैं- एक तो करम्बित (मिलावटी-बनावटी-दूषित) आचार से सदा विमुख रहने वाली, दूसरे एकान्ततः (सर्वथा) विरतिरूपा-किसी भी पर-पदार्थ में आसक्ति न रहने वाली। यह अलौकिकी वृत्ति ही जैन मुनियों की जान-प्राण और उनके मुनि जीवन की शान होती है। बिना इसके सब कुछ फीका और नि:सार है।

इस सब कथन का सार यह निकला कि निर्ग्रन्थ रूप से प्रव्रजित-दीक्षित जिनमुद्रा के धारक दिगम्बर मुनि दो प्रकार के हैं- एक वे जो निर्मोही - सम्यग्दृष्टि हैं, मुमुक्षु-मोक्षाभिलाषी हैं, सच्चे मोक्षमार्गी हैं, अलौकिकी वृत्ति के धारक संयत हैं और इसलिए असली जैन मुनि हैं। दूसरे वे, जो मोह के उदयवश दृष्टि-विकार को लिये हुए मिथ्यादृष्टि हैं, अन्तरंग से मुक्तिद्वेषी हैं, बाहर से दम्भी मोक्षमार्गी हैं, लोकाराधन के लिए धर्मक्रिया करने वाले भवाभिनन्दी हैं, संसारावर्तवर्ती हैं, फलतः असंयत हैं और इसलिए असली जैनमुनि न होकर नकली मुनि अथवा श्रमणाभास हैं। दोनों की कुछ बाह्य क्रियाएं तथा वेष सामान्य होते हुए भी दोनों को एक नहीं कहा जा सकता, दोनों में वस्तुतः जमीन आसमान का सा अन्तर है। एक कुगुरु संसार-भ्रमण करने-करानेवाला है तो दूसरा सुगुरु संसार-बन्धन से छूटने-छुड़ाने वाला है। इसी से आगम में एक को वन्दनीय और दूसरे को अवन्दनीय बतलाया है। संसार के मोही प्राणी अपनी सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए भले ही किसी परमार्थतः अवन्दनीयकी वन्दना, विनयादि करें- कुगुरु को सुगुरु मान लें- परन्तु एक शुद्ध सम्यग्दृष्टि ऐसा नहीं करेगा। भय, आशा, स्नेह और लोभ में से किसी के भी वश होकर उसके लिए वैसा करने का निषेध है।

संदर्भ

१. सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
यदीयप्रत्यनीकानि भवन्ति भवपद्धतिः ॥ रत्नकरण्डक श्रावकाचार ।
२. दंसणभट्टा भट्टादंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं। दंसणपाहुड।
३. मोहा मिथ्यादर्शनमुच्यते - रामसेन, तत्त्वानुशासन।
४. मुक्ति यियासता धार्य जिनलिङ्गं पटीयसा। योगसार प्रा. ८-१
५. भयाशास्नेहलोभाच्च कुदेवागमलिङ्गिनाम्।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्यः शुद्धदृष्टयः ॥ रत्नकरण्डक श्रावकाचार ।

बोध कथा

दयालु न्यायाधीश

एक जज साहब-कचहरी खुलने का समय हो जाने से कार में तेजी से भागे जा रहे थे। बार-बार अपनी घड़ी देख रहे थे। वे समय पर पहुँचने के लिए आतुर थे। जाते हुए मार्ग में उन्होंने देखा कि एक कुत्ता नाली में फँसा हुआ है। जीवेषणा (जीने की इच्छा) है उसमें किन्तु प्रतीक्षा है कि कोई आ जाये और उसे कीचड़ से बाहर निकाल दे।

जज साहब कार रुकवाते हैं और पहुँच जाते हैं उस कुत्ते के पास। कुत्ते की वेदना देखकर जज साहब का हृदय दया से भर गया। उनके दोनों हाथ कुत्ते को बचाने के लिए नीचे झुक गये। उन्होंने कुत्ते को नाली से बाहर निकाल कर सड़क पर खड़ा कर दिया। सच है सेवा वही कर सकता है, जो झुकना जानता है।

कुत्ते की स्थिति देखने के लिए सहज भाव से जज साहब कुत्ते के पास ही खड़े हो गये। नाली से बाहर सड़क पर आते ही उस कुत्ते ने एक बार जोर से सारा शरीर हिलाया। उसके शरीर के हिलने से शरीर में लगा नाली का कीचड़ उचटकर पास में खड़े जज साहब के कपड़ों पर जा गिरा। सारे कपड़ों पर कीचड़ के धब्बे लग गये। वस्त्र मलिन हुए परन्तु जज साहब का मन जरा भी मलिन नहीं हुआ। वे वस्त्र बदलने घर नहीं लौटे। उन्हीं वस्त्रों में पहुँच गये अदालत में।

अदालत में जिन्होंने जज साहब को मलिन वस्त्रों में देखा वे सभी चकित हुए किन्तु जज साहब के चेहरे पर अलौकिक आनन्द की आभा खेल रही थी। वे शांत थे। लोगों के बार-बार पूछने पर वे बोले - 'मैंने अपने हृदय की तड़पन मिटाई है, मुझे बहुत शांति मिली है।'

वास्तव में दूसरे की सेवा करने में हम अपनी ही वेदना मिटाते हैं। दूसरे की सेवा हम कर ही नहीं सकते, दूसरे तो मात्र निमित्त बन सकते हैं। उन निमित्तों के सहारे अपने अंतरंग में उतरना, यही सबसे बड़ी सेवा है। अपनी सेवा में जुट जाओ अपने आपको कीचड़ से बचाने का प्रयास करो।

'विद्या-कथाकुञ्ज'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामायिक की प्रासंगिकता

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, बड़ौत

श्रावक और श्रमण दोनों की आध्यात्मोन्नति का प्रथम सोपान सामायिक का जैनधर्म-दर्शन में महत्वपूर्ण स्थान है। आध्यात्मिकता के क्षेत्र में यह प्रवेश द्वार रूप होता है। यह आत्मकल्याण के साथ पर कल्याण में सहायक है। इससे मानव सावद्य योगों से विरति को प्राप्त होता है। पापकारी प्रवृत्तियों को दूर कर सद्गुणों के आचरण में सहकारी होता है, इसीलिए आचार्यों ने श्रावकों के लिए सुखी जीवन जीने की शिक्षा प्रदान करते हुए प्रथम शिक्षाव्रत के रूप में सामायिक का प्रतिपादन किया है। श्रावक जीवन में आत्मोन्नति करने में सहायक सामायिक को तृतीय प्रतिमा स्वीकार किया गया है। श्रमण के षडावश्यकों में सामायिक का प्रथम स्थान है। चारित्र के भेदों में भी सामायिक चारित्र है। सामायिक को विविध रूप में वर्णित करने का आशय यही है कि इसके बिना मोक्षमार्ग ही नहीं है। यह गृहस्थ और मुनि दोनों के लिए परोपकारी है।

सामायिक के माध्यम से मानसिक अशान्ति और सामुदायिक अशांति के कारण कलह, दोषारोपण, चुगली, निंदा, मिथ्यात्व आदि से बचकर लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण, निंदा-प्रशंसा में समभाव हो जाता है, क्योंकि सामायिक में साधक के चित्तवृत्ति क्षीरसमुद्र की भांति पूर्णरूप से शांत रहती है। नवीन कर्मों का अनुबंधन न कर साधक आत्मस्वरूप में अवस्थित हो जाता है। इसलिए पूर्वसंचित कर्मों की निर्जरा भी करता है। सामायिक के माध्यम से युवक बृद्ध जैसी परिपक्वता की अनुभूति कर सकता है और बृद्ध युवक जैसी स्फूर्ति प्राप्त कर सकता है। अभिशापों को दूर कर जीवन को वरदान बनाया जा सकता है, सामायिक साधना के द्वारा।

मानव अनेक कामनाओं के भंवरजाल में उलझा रहता है, जिससे उसका जीवन द्वंद्व व तनाव से ग्रस्त रहता है। बर्बरता, पशुता, संकीर्णता व रागद्वेष के विकार प्रति समय उसे प्रकृति से च्युत कर विकृति में फँसाए रखते हैं। जीवन की सभी विषमताओं से बचने के लिए और संतुलन बनाए रखने के लिए सामायिक की आवश्यकता है। सामायिक में साधक बाह्यदृष्टि का परित्याग कर अन्तर्दृष्टि को अपनाता है, विषमभाव का परित्याग कर समभाव में अवस्थित होता है, पर पदार्थों से ममत्त्व हटाकर निजभाव में स्थित होता है। जैन अनन्त आकाश विश्व के चराचर प्राणियों के लिए आधारभूत है, वैसे ही सामायिकसाधना आध्यात्मिक साधना के लिए आधारभूत है।

सामायिक की साधना को केवल क्रिया तक सीमित नहीं समझना चाहिए वह एक विशेष साधना एवं उपासना है।

सामायिक का अर्थ और उद्देश्य प्राणीमात्र को आत्मवत्, अर्थ इस प्रकार है- समस्त जीवों पर मैत्रीभाव रखना साम है। सावद्ययोग अर्थात्- पापमय प्रवृत्तियों का परित्याग और निरवद्ययोग अर्थात् अहिंसा, सत्य, समत्व आदि प्रवृत्तियों आचरण रूप जीव का शुद्ध स्वभाव सम कहलाता है। रागद्वेष के प्रसंगों में मध्यस्थ रहना विषम न होना। सम अर्थात् समता है यही सामायिक है। सामायिक में समय शब्द का अर्थ है सम्यक्त्व, ज्ञान, संयम और तप के साथ ऐक्य स्थापित करना। इस प्रकार अन्य परिणामों की वृत्ति बनाए रखना ही सामायिक है। अर्थात् राग और द्वेष का विरोध करके समस्त आवश्यक कर्त्तव्यों में समताभाव बनाए रखना ही सामायिक है। आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने समभाव की मुख्यता पूर्वक ही सामायिक का लक्षण बताकर उसके करने की प्रशस्त प्रेरणा प्रदान की है। ''समस्त सजीव, निर्जीव, मूर्त-अमूर्त पदार्थों पर रागद्वेष का परित्याग करके समभाव का अवलम्बन लेकर तत्त्वोपलब्धि (समत्व प्राप्ति) मूलक सामायिक अनेक बार करनी चाहिए। कारण यह है कि सामायिक से आत्मा की सावद्य योग (मन, वचन, काय की पापयुक्त प्रवृत्ति)से विरति रूप महाफल की प्राप्ति होती है। सांसारिक समस्त उपाधियों से हटाना सामायिक का सबसे बड़ा लाभ है जैसा कि कहा है:-

सामाइयं नाम सावज्जजोग परिवज्जणं।
निरवज्जजोग पडिसेवणं च॥

अर्थात् सावद्ययोग का परित्याग और निरवद्ययोग का सेवन करना ही सामायिक है। आचार्य पूज्यपाद ने व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ बतलाते हुए कहा है कि सम उपसर्ग पूर्वक गत्यर्थक इण् धातु से समय शब्द निर्मित हुआ है। सम=एकीभाव, अय=गमन अर्थात् एकभाव के द्वारा बाह्य परिणति से पुनः मुड़कर आत्मा की ओर गमन करना ''समय'' है। समय का भाव ही सामायिक है। पंडित आशाधर जी ने सामायिक शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है कि ''समाये भवः सामायिकम्'' अर्थात् सम राग द्वेष जनित इष्ट अनिष्ट की कल्पना से रहित जो अय-ज्ञान है, वह समाय कहलाता है और उस समय में जो होता है, उसे सामायिक कहते हैं। यह सामायिक शब्द का निरुक्तार्थ है और समता परिणति का होना वाच्यार्थ है। मूलाधार में सामायिक शब्द की निरुक्ति 'समय' शब्द से ही है। अनगार धर्मामृत में भी यही उल्लेख है। दर्शन, ज्ञान, तप, यम तथा नियम आदि में जो सम प्रशस्त अय-गमन है उसे समय कहते हैं और समय का नाम ही सामायिक है क्योंकि समय शब्द से स्वार्थ में ठण् (ठञ्) प्रत्यय होने से सामायिक शब्द की सिद्धि होती है। सम शब्द का श्रेष्ठ अर्थ है। अयन का अर्थ आचरण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेष्ठ आचरण को सामायिक कहा गया है।

आचार्यों द्वारा प्रतिपादित सामायिक शब्द की व्युत्पत्ति एवं परिभाषाओं के आधार पर यह फलितार्थ निकलता है कि समता का भाव ही सामायिक है। यह किसके होता है। इस विषय में कहा गया है-

तसेसु थावरेसु य। तस्स समाइयां हवइ इइ केवलीभसियं॥

जो सब प्राणियों के प्रति सम होता है उसे सामायिक की सिद्धि अर्थात् सामायिकी के लिए मन में किसी भी प्राणी के प्रति कोई विषमता नहीं होती, वह समभाव की साधना में बढ़ता चला जाता है। रागद्वेष तथा अन्य विकार परिणामों को न करके अपने ही निजशुद्ध चिदानन्द रूप आत्मा में रमण करता है। सामायिक किसे होती है इसके विषय में और भी कहा गया है "जो बुद्धिमान पुरुष स्व-पर पदार्थों के संबंध के स्वरूप को जानता है जिनागम के अनुसार द्रव्य-गुण और पर्याय के स्वरूप को और उनके संबंध के स्वरूप को जानता है, हेय और उपादेय तत्वों को जानता है और बंध-मोक्ष कारणों को जानता है उस परम ज्ञानी के सामायिक होती है। इस अध्यात्म साधना के द्वारा आत्मा को पौद्गलिक - वैषयिक सुखों की आसक्ति तथा विषम प्रतिकूल परिस्थिति जन्य दुःखों के प्रति द्वेष से विरत करके आध्यात्मिक विकास के चरम शिखर तक साधक पहुँच जाता है।"

सामायिक में द्रव्य-भाव युक्त समत्व साधना का अभ्यास मुख्य रूप से होता है। द्रव्यसामायिक सामायिक की बाह्य क्रियाओं तथा मन वचन काय की शुद्धता तक सीमित है जबकि विषयभाव का त्याग कर समभाव में स्थित होना पौद्गलिक पदार्थों का सम्यक् स्वरूप जानकर ममता दूर करना और आत्मभाव में लीन होना भाव सामायिक है। सामायिक के विषय में आचार्य नेमीचंद सिद्धान्त चक्रवर्ती ने भी कहा है। पर द्रव्यों से निवृत्त होकर जब साधक की ज्ञान-चेतना, आत्मस्वरूप में प्रवृत्त होती है तभी भावसामायिक होती है। पं. आशाधर जी ने भी कहा है-

सर्वे वैभाविका भावामतोऽन्ये तेएवतः कथम् ?
चिच्चमत्कार मात्रात्मा प्रीत्यप्रीति तनोम्यहम्॥ 30॥

अन. धर्मामृत 8

औदयिक आदि भाव तथा जीवन मरण आदि ये सब वैभाविकभाव मेरे नहीं हैं। ये मुझसे भिन्न हैं। अत: चिच्चमत्कार मात्र स्वरूप वाला मैं इनमें रागद्वेषादि को कैसे प्राप्त हो सकता हूँ।

सामायिक की साधना को बार-बार के अभ्यास से पुष्ट एवं सुदृढ़ बनाने के लिए उसके चार रूपों पर ध्यान देना आवश्यक है (1) द्रव्य सामायिक, (2) क्षेत्र सामायिक, (3) काल सामायिक, (4) भाव सामायिक। इन्हीं चतु: प्रकारीय सामायिक को पंडित आशाधर जी नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से छह प्रकार की साधना करने का विधान देते हैं- शुभ अशुभनामों को सुनकर रागद्वेष का छोड़ना नाम सामायिक है। यथोक्त मान उन्मान आदि गुणों से मनोहर अथवा मनोहर प्रतिमा आदि के विषय में रागद्वेष का न होना स्थापना सामायिक है। सुवर्ण तथा मिट्टी आदि में समता परिणाम होना द्रव्य सामायिक है। बाग-बगीचे तथा कण्टक वन आदि अच्छे-बुरे क्षेत्रों में समभाव होना क्षेत्र सामायिक है। बसन्त, ग्रीष्म आदि ऋतुओं अथवा दिन-रात आदि इष्ट-अनिष्ट काल के विषय में रागद्वेष रहित होना काल सामायिक है और सभी जीवों में मैत्रीभाव का होना तथा अशुभ परिणामों का छोड़ना भाव सामायिक है। इन छह प्रकार की सामायिक में द्रव्यभाव की प्रधानता है। द्रव्युक्त भाव सामायिक करने वाला समता के गहन समुद्र में इतना गहरा उतर जाता है कि विषमता की लपटें उसके पास फटक नहीं सकतीं। यह निश्चित है कि जो व्यक्ति द्रव्य सामायिक के साथ-साथ भाव सामायिक का अभ्यासी होता है, वह जीवन के किसी भी क्षेत्र में समभाव से विचलित नहीं होता है। द्रव्य के साथ भाव का मेल होने पर उभयपक्षीय समभाव की साधना पूरी होती है तभी व्यावहारिक शुद्धि और आत्मविश्वास का अंतिम लक्ष्य पूर्ण हो सकता है।

व्यवहारिक जीवन को नष्ट भ्रष्ट करने में कषायों की मुख्य भूमिका होती है। क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कषायों के कारण मानव सामाजिक भी नहीं रह पाता। क्रोध के कारण मानव आवेश, संघर्ष आदि में प्रवृत्त होता है। मान के कारण अपने को महान् समझता है और दूसरों के साथ घृणापूर्ण व्यवहार करता है, माया के कारण अविश्वास और अमैत्रीपूर्ण व्यवहार किया जाता है। लोभ के वशीभूत होकर खोटी प्रवृत्तियों में फंसता है। इन्हीं चारों कषायों से सामाजिक जीवन दूषित होता है। मानव के लिए सामाजिक विषमताओं को दूर कर सामाजिक जीवन में समता की स्थापना करना ही अत्यावश्यक है इसीलिए कषायों के उन्मूलन के लिए सामायिक ही श्रेष्ठ उपाय है।

सामायिक का मुख्य उद्देश्य भौतिक सु:ख-दु:ख से छुटकारा पाना है। ऐन्द्रिक विषयों एवं मानसिक विकारों पर विजय पाने के लिए सामायिक अथवा ध्यान से भिन्न कोई दूसरा साधन श्रेष्ठ नहीं है। सामान्यत: ध्यान और सामायिक एक ही हैं। उनकी बाहरी आकृति में भिन्नता है और अन्तरात्मा एक है उनमें भेद रेखा खींचना कठिन है। इसीलिए साम्यभाव में आर्त्त रौद्र दोनों खोटे ध्यानों को स्थान नहीं है। आचार्य अमितगति सामायिक के स्वरूप पर विचार करते हुए लिखते हैं- समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावना।

आर्त्तरौद्र परित्यागस्तद्धि सामायिकं व्रतम्॥ सामायिक पाठ इन्द्रिय विषयों के निमित्त मिलने पर रागद्वेष न करना संयम रखना। अन्तर्मुहूर्त में मैत्री आदि शुभ भावना - शुभ संकल्प रखना आर्त्त रौद्र ध्यानों का परित्याग करके धर्म स्थान का चिंतन करना सामायिक व्रत है। आचार्य हेमचंद्र अन्तर्मुहूर्त के लिए सामायिक करना अनिवार्य मानते हैं।

सामायिक के काल में साधक आत्मा को उत्तम अवलम्बन पर ही आश्रित रखता है। राग (आसक्ति मोह) द्वेष (घृणा, दोष) आदि को मन में नहीं आने देता है। सम्मान और अपमान ये दोनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही अवस्थाओं में समभाव को नहीं छोड़ता है। दोनों ही अवस्थाएँ क्षणिक मानकर सम रहता है। मन में वैषम्य या विकार नहीं आने देता है। आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने सामायिक करने वाले के चिंतन को बतलाया है:-

अशरणमशुभमनित्यं दु:ख मनात्मानभावसामि भवम्।
मोक्षस्तद्विपरीतात्मेति ध्यायन्तु सामायिके॥

अर्थात् सामायिक के समय श्रावक चिंतन करता है कि जिस संसार में मैं रह रहा हूँ, वह अशरण है, अशुभ है, अनित्य है, दु:ख रूप है और मेरे आत्मस्वरूप से भिन्न है तथा मोक्ष इससे विपरीत स्वभाव वाला है। अर्थात् शरणरूप है, शुद्ध रूप है, नित्य है, सु:ख मय है और आत्मस्वरूप है।

चिंतन की पात्रता की अपेक्षा आचार्यों ने सामायिक की विधि और काल आदि का भी निर्धारण किया है जैसे सामान्य गृहस्थ को सामायिक अभ्यास रूप क्रिया बतलाई है उसके शिक्षाव्रतों में सामायिक प्रथम शिक्षाव्रत है, जिसके अभ्यास से व्रती गृहस्थ आत्मविकास कर सकता है। गृहस्थ को प्रतिदिन सामायिक अवश्य करना चाहिए। क्योंकि दिन में जो हिंसा आदि पाप क्रियाएँ होती है, उनके फल से सुरक्षा और अहिंसा आदि व्रतों की पूर्णता होती है। इसीलिए आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने गृहस्थ को प्रतिदिन सामायिक करने की प्रशस्त प्रेरणा प्रदान की

सामायिकं प्रतिदिवसं यथावदप्यनलसेन चेतव्यम्।
व्रतपञ्चक परिपूरण कारणमवधान युक्तेन॥

रत्नकरण्डक श्रावकाचार 101

आलस्य रहित होकर सावधानी के साथ पांचों व्रतों की पूर्णता करने के कारणभूत सामायिक का प्रतिदिन अभ्यास बढ़ाना चाहिए।

व्यापार आदि में व्यस्त रहने के कारण संसारी प्राणी उपयोग स्थिर नहीं रख पाते हैं, उन्हें चंचलता घेरे रहती है। चंचलता को रोकने के लिए चित्त की स्थिरता आवश्यक है और चित्त की स्थिरता के लिए सामायिक की वृद्धि करना भी आवश्यक है। जैसा कि कहा है-

व्यापार वैमनस्याद्विनिवृत्त्यामन्तरात्म विनिवृत्या।
सामायिकं वध्नीयादुपवासे चैकभुक्ते वा॥

रत्नकरण्डक श्रावकाचार 100

उपवास अथवा एकाशन के दिन गृह व्यापार और मन की व्यग्रता को दूर करके अन्तरात्मा में उत्पन्न होने वाले विकल्पों की निवृत्ति के साथ सामायिक का अनुष्ठान करें। सामायिक शिक्षाव्रत तीसरी सामायिक प्रतिमा के लिए अभ्यास रूप है इस शिक्षाव्रत में दिन में तीन बार सामायिक होना चाहिए। अगर इस प्रकार नहीं बने तो कम से कम दिन में एक बार तो अवश्य ही होना चाहिए।

सामायिक करने के लिए उद्यत व्रती सबसे पहले केश बंधन करे। मुष्टि और वस्त्र में बंधन कर प्रतिज्ञा करें कि इनके खुलने तक मैं आत्मविचार या सामायिक करूंगा। उसी प्रकार पर्यंकासन, पदमासन आदि आसनों में बैठकर बैठक का नियम भी कर लेंवे। चित्त में चंचलता न हो इसके लिए स्त्री, नपुंसक, पशु, बालक आदि से रहित, निरूपद्रवी एकांत जिन मंदिर, वन, घर आदि स्थान में सामायिक करने के लिए व्रती बैठें क्योंकि उस समय शांत चित्त का होना आवश्यक है। गृहस्थ भी सामायिक के काल में आरम्भ, सर्वपरिगृह से विरत होने के कारण वस्त्र ढके मुनि के समान माना गया है।

संसार संबंधी मन, वचन, काय की प्रवृत्ति को छोड़कर यथासंभव प्रतिदिन त्रिसंध्या काल में सामायिक करने का विधान है। प्रथम संध्या का समय सुबह सूर्योदय के पहले उत्कृष्ट रूप से एक घंटा बारह मिनट से प्रारम्भ करके सूर्योदय के बाद में एक घंटा बारह मिनट तक होता है। इसी प्रकार सायं समय में सूर्यास्त के पूर्व एक घंटा बारह मिनट पहले से सामायिक आरम्भ करके सूर्यास्त के बाद एक घंटा बारह मिनट तक करना चाहिए। दोपहर दस बजकर अड़तालीस मिनट से प्रारम्भ करके एक बजकर बारह मिनट तक का समय सामायिक का उत्कृष्ट काल है। एक घंटा छत्तीस मिनट का काल मध्यम है और मात्र 48 मिनट का काल जघन्य है। पूरे दिन में उक्त समय सहज, पुनीत, पावन माने गए हैं। यही कारण है कि तीर्थंकरों की दिव्यदेशना इन्हीं समयों में हुआ करती है। यह समय आत्म चिन्तन के लिए अत्यधिक उपयोगी है।

उक्त सामायिक काल में ही सामायिक करते समय काष्ठ या पाषाण मूर्ति के समान निश्चल बैठें। इधर-उधर न देखें। पञ्चेन्द्रिय संबंधी विषयाभिलाषाओं का परित्याग करें। चेतनाचेतन पदार्थों में रागद्वेष का त्याग कर समताभाव का आश्रय करें। नासाग्रदृष्टि रखकर परमात्मा के स्वरूप का चिंतवन, परमेष्ठी गुण स्मरण, द्वादशानुप्रेक्षा, षोडशकारणभावना, दशभक्ति, चतुर्विंशतिस्तवन, मैत्रीप्रमोद, कारूण्य, माध्यस्थ भावनाओं को पढ़ते विचारते हुए सामायिक में आत्मनिरीक्षण करें। सामायिक प्रतिमा का धारक चार बार 3+3 आवर्त और चार प्रणाम करके यथाजात के समान निर्विकार बनकर खड्गासन या पद्मासन से बैठकर मन, वचन, काय शुद्ध करके तीनों संध्याओं में देव शास्त्रगुरु की वंदना और प्रतिक्रमण आदि भी करता है। श्रमण अपने आवश्यक के रूप में उक्त विधि अनुसार ही क्रिया विधि करते हैं। किन्तु द्रव्य, गुण, पर्याय और आत्मस्वरूप का विशेष चिंतन करते हैं।

श्रावक और श्रमण दोनों ही शक्ति अनुसार सामायिक विधि को अपने जीवन में प्रथम स्थान दें। इसी के द्वारा चतुर्गति रूप भ्रमण नष्ट किया जा सकता है। चारित्र की प्राप्ति के लिए सामायिक कारण हैं। चारित्र में भी सामायिक का प्रथम स्थान है, जो मुक्ति प्रदान करता है।

इस प्रकार निश्चत हुआ कि सामायिक श्रावक और श्रमण दोनों के लिए सभी दृष्टियों से कल्याणकारी है। शारीरिक और मानसिक स्वस्थता के साथ आत्मोपलब्धि का एकमात्र साधन है अत: इसका अभ्यास प्रतिक्षण जीवन में कार्यकारी है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावकाचार

प्रस्तुति : सुशीला पाटनी

श्रावक का अर्थ

श्रावकाचार का तात्पर्य है- गृहस्थ का धर्म। श्रावक शब्द का सामान्य अर्थ है- सुनने वाला। जो गुरुओं के उपदेश को श्रद्धापूर्वक सुनता है। वह श्रावक है, श्रावक शब्द तीन अक्षरों के योग से बना है- श्र, व और क इसमें 'श्र' श्रद्धा का, 'व' विवेक का तथा 'क' कर्त्तव्य का प्रतीक है। इस प्रकार श्रावक का अर्थ करते हुए कहा गया है कि जो श्रद्धालु और विवेकी होने के साथ-साथ कर्त्तव्यनिष्ठ हो, वह श्रावक है। श्रावक के अर्थ में, उपासक, सागार, देश-विरत, अणुव्रती आदि अनेक शब्द आते हैं। गुरुओं की उपासना करने वाला होने से उसे उपासक, आगार/घर सहित होने से सागार, गृही या गृहस्थ तथा अणुव्रतधारी होने से अणुव्रती, देशव्रती या देशसंयत कहा जाता है।

पाक्षिक श्रावक

जैन आचार शास्त्रानुसार एक आदर्श गृहस्थ वही है, जो न्यायपूर्वक आजीविका उपार्जन करता है। गुणी पुरुषों एवं गुणों का सम्मान करता है। हितकारी और सत्य वाणी बोलता है। धर्म, अर्थ और काम रुप तीन पुरुषार्थों का परस्पर अविरोध से सेवन करता है। इन पुरुषार्थों के योग्य स्त्री, भवन आदि को धारण करता है। लज्जाशील होता है, अनुकूल आहार-विहार करने वाला होता है। सदाचार को अपने जीवन की निधि मानने वाले सत्पुरुषों की सेवा में सदा तत्पर रहता है। हिताहित विचार में दक्ष, जितेन्द्रीय और कृतज्ञ होता है। धर्म की विधि को सदा सुनता है, उसका मन दया से द्रवीभूत रहता है तथा पाप-भीरु होता है। उक्त चौदह विशेषताओं से भूषित व्यक्ति ही एक आदर्श गृहस्थ की श्रेणी में समाविष्ट होता है।

रात्रि भोजन का त्याग

रात्रि-भोजन का भी प्रत्येक गृहस्थ को त्याग करना चाहिए। रात्रि में भोजन करने से त्रस हिंसा का दोष लगता है।

रात्रि भोजन स्वास्थ्य की दृष्टि से भी हानिकर है। चिकित्सा शास्त्रियों का अभिमत है कि कम से कम सोने के तीन घण्टे पूर्व तक भोजन कर लेना चाहिए। जो लोग रात्रि भोजन करते हैं वे भोजन के तुरन्त बाद सो जाते हैं जिससे अनेक रोगों का जन्म होता है। दूसरी बात यह कि सूर्य प्रकाश में केवल प्रकाश ही नहीं होता, अपितु जीवन दायिनी शक्ति भी होती है।

आर. के. मार्बल्स लि.,
मदनगंज-किशनगढ़

आचार्य श्री विद्यासागर के सुभाषित

- **सराग सम्यग्दर्शन के साथ चिन्तन का जन्म होता है किन्तु वीतराग सम्यग्दर्शन में चिंतन चेतन में लीन हो जाता है। सराग सम्यग्दर्शन में ज्ञान को सम्यक् माना जाता है जबकि वीतराग सम्यग्दर्शन में ज्ञान स्थिर हो जाता है।**
- **जिस व्यक्ति में साधर्मी भाईयों के प्रति करुणा नहीं, वात्सल्य नहीं, कोई विनय नहीं वह मात्र सम्यग्दृष्टि होने का दंभ भर सकता है, सम्यग्दृष्टि नहीं बन सकता।**
- **सांसारिक अनेक पाप के कार्य करते हुये भोग को निर्जरा का कारण कहना और भगवान् की पूजन दानादि क्रियाओं को मात्र बंध का कारण बतलाना यह सारा का सारा जैन सिद्धांत का अपलाप है।**
- **जो व्यक्ति बिल्कुल निर्विकार सम्यग्दृष्टि बन चुका है और जिस व्यक्ति की दृष्टि तत्व तक पहुँच गयी है, उसके सामने वह भोग सामग्री है ही नहीं, उसके सामने तो वह जड़ तत्व पड़ा है। उस व्यक्ति के लिये कहा गया है कि तू कहीं भी चला जा तेरे लिये सारा संसार ही निर्जरा का कारण बन जायेगा।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समकालीन परिवेश में नारी-अस्मिता

डॉ. शशिप्रभा जैन

विधाता ने नारी को एक महत्वपूर्ण भार सोंपा है। सृष्टि के संचालन का किन्तु सृष्टि का ही आदि प्रश्न, अनादि कौतुहल, सृष्टि की ही आदि शक्ति नारी क्या है ? उस की अस्मिता, उस का निजत्व, उस की पहचान आज भी एक ज्वलंत प्रश्न-चिन्ह है। किन्तु इस के साथ ही 21 वीं सदी में भारतीय नारी के निरन्तर बढ़ते हुए कदम, जिसमें उस का अस्तित्व, उसकी अस्मिता एवं उस की अपनी विशिष्ट पहचान तो सिद्ध करती है। साथ ही इस सत्य का भी उद्घाटन करती है कि समकालीन परिवेश में नारी अस्मिता कितनी सकारात्मक, कितनी नकारात्मक, कितनी प्रकृत, कितनी विकृत और कितनी सार्थक एवं निरर्थक सिद्ध हुई है। अत: दोनों ही पक्ष चिन्तनीय हैं।

भारत में महिलाओं की स्थिति प्राचीन काल से ही भेदभावपूर्ण रही है। प्राचीन काल में स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय थी। मध्यकाल में और भी बद से बदतर होती गई। भारतीय परिवारों में नारी जहाँ माँ के रूप में करूणा, प्रेम, त्याग की देवी के रुप में प्रतिष्ठित हुई, वहाँ सामाजिक जीवन में मात्र भोग्या ही रह गई। सच है, भारत विविधताओं का ही नहीं विषमताओं का भी देश है। कहने को तो हम आकाश की ऊँचाइयों को छू रहे हैं। चाँद पर अपने अस्तित्व का झंडा फहरा आये हैं किन्तु मन और मस्तिष्क से हम अभी भी पिछड़े हुए हैं।

समय परिवर्तनशील है। कालचक्र कभी एक जगह रुकता नहीं। युग बदला और यकीनन युग के बदलते हुए परिवेश में भारतीय महिलाओं की सोच भी बदली, जीवन के प्रति अवधारणा बदली। परिणामत: एक जबरदस्त बदलाव आया। उसने अपने शोषण के इतिहास को भली-भाँति समझा, तथ्यात्मक सत्य को अंगीकृत किया, परम्परागत दुर्बलताओं को पहचाना और अपने पतन के मूल कारण अशिक्षा को माना। अत: आज महिलाओं की समझ स्पष्ट हो गयी है कि यदि सामाजिक जीवन में अपने बजूद को कायम रखना है, अपनी अस्मिता को बनाये रखना है तो समाज संचालन के वे सभी नुस्खे (सूत्र) जो पुरुषों की धरोहर बन गये हैं, उन में उस को साझीदारी करनी होगी, सहभागिता करनी होगी तभी समाज निर्माण में उन की सशक्त भूमिका का निर्वाह हो सकेगा। यही कारण है कि आज भारतीय महिलाएँ हर क्षेत्र में न केवल अपने कदम बढ़ा रही हैं, बल्कि वहाँ खुद को स्थापित भी कर रही हैं। जो क्षेत्र कल तक केवल पुरुषों के क्षेत्र माने जाते थे- बात चाहे खेल, शिक्षा, प्रशासन, कला, विज्ञान, अनुसंधान की हो अथवा सामाजिक और राजनीतिक चेतना जगाने की। कुछ एक विशिष्ट समझे जाने वाले क्षेत्रों में तो महिलाएँ पुरुषों से भी आगे निकल गई हैं। निष्कर्षत: नारी चेतना जाग्रत हुई है। नारी शक्ति सक्रिय हुई है। घर की चारदीवारी से बाहर निकल तमाम बाधाओं के बाबजूद भी नई बुलन्दियों को छुआ है। अत: उपग्रह हो या आकाश, आर्किटेक्चर हो या सेना, शासन हो या प्रशासन, राजनीति हो या सामाजिकता, व्यवसाय हो या योगशाला, मेडीकल हो या टेक्नोलॉजी, विज्ञान हो या गृह विज्ञान, मीडिया हो या मॉडलिंग, शिक्षा हो या प्रशिक्षा, जूड़ो-कराटे हो या नृत्यकला विकास के सभी विविध कार्य क्षेत्रों में उसने अपनी संपूर्ण दक्षता का परिचय देते हुए सम्मानपूर्वक आज अपने आप को प्रतिष्ठित ही नहीं कर लिया है बल्कि निरन्तर उसके बढ़ते हुए कदम यह सिद्ध कर रहे हैं कि इक्कीसवीं सदी महिलाओं की अपनी सदी होगी। एतदर्थ राष्ट्र के अर्द्धांग नारी सामाज ने अपने परिवारिक दायित्व के साथ-साथ राष्ट्रीय कर्त्तव्य बोध, अनन्य देश-भक्ति, स्वधर्म, स्व-संस्कृति का स्वाभिमान जाग्रत कर देश के प्रति, समाज के प्रति समर्पण का भाव निर्मित कर एक रचनात्मक स्वस्थ दिशा में अहर्निशि बढ़ती जा रही है। सरकारी स्तर पर भी 'महिला वर्ष' मना कर देश ने महिलाओं का प्रगति-पथ प्रशस्त किया है। आज प्रगतिशील महिला की चेतना का ज्वार इक्कीसवीं सदी के शिलाखण्ड पर 'महिला सदी' का नाम स्वर्णाक्षरों में टंकित करने जा रहा है।

हमारी संस्कृति इस तथ्य की ओर सदैव जागृत रही है कि स्त्रियों को मानवोचित सम्मान और पुरूषार्थ से मण्डित किया जाये और इसी के लिए नारी शक्ति को पारिवारिक, सामाजिक एवं देश की आधार शिला के रूप में स्मरण किया जाता रहा। किन्तु स्वतंत्र भारत में हुए विकास के प्रकाश से अन्धे नेत्रों ने नारी शक्ति के महत्व को ओझल कर दिया तथा भौतिकता के मकड़जाल ने नारी मन की कमजोरियों का अनुसंधान कर के उसे पुरूषदासता के कारागार में डाल दिया। इस तरह नारी-उत्पीड़न का द्वार उन्मुक्त हुआ और पुन: नारी प्रगति-अगति के मध्यवर्ती दुगर्ति के त्रिकोण में विद्यमान हो गयी है। घर और बाहर दोनों जगह भीषण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघर्ष करती हुई भारतीय महिलायें वासनाओं से दमित, कुरीतियों से अभिशप्त, क्रीतदासत्व से विजड़ित, अत्याचारी मद्यपदंभी पतियों से प्रताड़ित, अशिक्षा और अंधविश्वास की शिकार हो कर असह्य गंदगी और अश्लीलता के बोझ तले दब गयी है। ये समस्यायें विभिन्न पहलुओं से उभर कर संमुख आयी हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् प्रत्याभूति के पश्चात् भी भारतीय महिला की दशा दयनीयता के जाल से किन्चित ही उबर पायी है।

शोषण का गहराता साया हर समय, हर जगह घर-बाहर उसके पीछे ही रहता है। विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण सफलताएँ अर्जित करने के बाबजूद भी भारतीय महिलाओं को शोषण और अत्याचार से मुक्ति नहीं मिल पा रही है। यह कड़वा सच गृह मंत्रालय के अतंर्गत काम कर रहे अपराध पंजीकरण ब्यूरो द्वारा उद्घाटित किया गया है, जिस की रिपोर्ट में कहा गया है कि हर 47 मिनट में एक महिला बलात्कार की शिकार होती है, जब कि हर 44 मिनट में औसतन एक महिला का अपहरण किया जाता है। हर तीसरी महिला अपने पति या किसी संबंधी के अत्याचार का सामना कर रही है और हर रोज दहेज संबंधी मामलों में 17 महिलाएँ मौत के मुँह में धकेल दी जाती हैं। ये तो सरकारी आंकड़े हैं। असलियत तो यह है कि अनेक मामले इज्जत की खातिर थानों तक पहुँच ही नहीं पाते और पहुँच भी जायें तो भी क्या भरोसा कि रिपोर्ट लिखवाने गई महिला की इज्जत थाने के मुंशी के हाथों सुरक्षित रह पाये।

आज नारी विरोधी जो हालात बन रहे हैं वे उपभोक्ता संस्कृति की देन है। समकालीन परिवेश में नारी अस्मिता को पाश्चात्य एवं आधुनिक उपभोक्तावादी संस्कृति ने कुछ कम प्रभावित नहीं किया है। यही कारण है कि उस के अंधानुकरण ने आज 'नारी अस्मिता' को विषय से वस्तु बना दिया है। और वह पुरुष की 'भोग' सामग्री बनकर ही रह गई है। बाजारवाद के उभार के साथ जिस तरह उसे 'सेक्स सिबंल' बना कर पेश किया जा रहा है और वह स्वयं भी जिस तरह गलत समझौते करके अथवा अपने 'देह-बोध' को उभार कर स्वयं को प्रस्तुत कर रही है, यह नितांत चिंता का विषय है। यह उपभोक्तावाद हमारे समाज को संवेदनशून्य बनाता जा रहा है। आज हमारे यहाँ नारी अस्मिता कुचली जा रही है। एक ओर अबोध बालिका, दूसरी ओर बृद्ध महिला तक को आज पुरूष अपनी नागफनी वृत्ति का शिकार बना रहा है यहाँ तक कि हमारे समाचार माध्यमों में भी महिलाओं के सवाल आज भी केन्द्रीय महत्व के न होकर महज उनका रुप ही ज्यादातर सजावटी होता है। एक भंयकर सच यह भी है कि स्वयं नारी अपने पतन के लिए कम घातक सिद्ध नहीं हुई है। भ्रूण हत्या जैसे जघन्य अपराध के लिए वह कभी भी क्षम्य नहीं है। ऐसे ही अनेक प्रसंगों में आज उसे पुन: आत्म मंथन की आवश्यकता है। सत्य निष्ठा के साथ आज उसे निर्णय करना होगा कि वह अपनी प्रकृति में प्रतिष्ठत है या विकृति में विभ्रमित हो रही है अथवा जीवन मूल्यों का उदात्तीकरण करती हुई एक अभिनव संस्कृति को जन्म दे रही है।

निष्कर्षत:- भारतीय नारी की वर्तमान में जो मानसिक स्थिति है और परिस्थिति है, उसका आंकलन करते हुए स्वयं उसे अपनी स्वस्थ दिशा का निर्माण करना होगा और उन समस्त महत्त्वपूर्ण ही नहीं अपरिहार्य बिन्दुओं को क्रियान्वयन करना होगा जो समकालीन परिवेश में नारी अस्मिता के लिए सोपान सिद्ध होगें साथ ही साध्य की उपलब्धि में सहायक होंगे। ये उद्देश्यमूलक बिन्दु इस प्रकार है:-

1. शैक्षिक स्तर को विकसित करना।
2. अपनी पारिवारिक महत्ता का बोध जागृत करना।
3. समाज में नारीत्व की प्रतिष्ठा को बनाये रखना।
4. आर्थिक रूप से स्वावलम्बी बनना।
5. अपनी निर्णयात्मक क्षमता का विकास करना।
6. महिला उत्पीड़न एवं यौन शोषण के विरुद्ध जन आंदोलन करना एवं कराना।
7. नारी के प्रति उपजी उपभोक्तावादी संस्कृति के विरुद्ध जनमत जागृत करना।
8. सामाजिक पुनर्रचना एवं राष्ट्र निर्माण में प्रभावी सहयोग देना।
9. नारी के प्रति पुरूष के पारम्परिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना।
10. पैतृक सम्पत्ति में महिलाओं की सम्यक् हिस्सेदारी का बोध जगाना।
11. नारी का नारी के प्रति उद्भूत द्वेषपूर्ण दृष्टिकोण एवं व्यवहार का आधारभूत परिहार करना।

अत: इन समस्त बिन्दुओं पर गंभीरतापूर्वक क्रियान्वयन करती हुई आज की भारतीय नारी अपनी गरिमामयी अस्मिता को प्रतिष्ठित करती हुई यह सिद्ध कर देगी कि नारी 'अबला' नहीं 'सबला' है। परिणामत: समकालीन परिवेश में नारी अस्मिता की यही सार्थकता सिद्ध होगी।

अध्यक्षा
उ.प्र. लेखिका मंच, आगरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

जिज्ञासा - क्या तिर्यंचों में पृथक विक्रिया पाई जाती है ?

समाधान - तिर्यंचों में पृथक्त्व विक्रिया नहीं पाई जाती। विक्रिया दो प्रकार की होती है- एकत्व विक्रिया तथा पृथक्त्व विक्रिया। अपने शरीर को ही विभिन्न आकार रूप परिणमा लेना एकत्व विक्रिया है जबकि अपने शरीर से भिन्न अन्य शरीर आदि की रचना करना पृथक्त्व विक्रिया है।

तिर्यंचों में पृथक्त्व विक्रिया नहीं पाई जाती। जैसा कि श्री राजवार्तिक में अध्याय-2, सूत्र 47 की टीका में इस प्रकार कहा है।

तिरश्चां मयूरादीनां कुमारादिभावं प्रतिविशिष्टैकत्वविक्रिया न पृथक्त्व विक्रिया।

टिप्पण - यो वृद्धो मयूरः स कुमारत्वेन विकरोतीत्यादि योज्यम्।

अर्थ - तिर्यंचों में मयूरादिकों की कुमारादि भाव रूप एकत्व विक्रिया होती है, पृथक्त्व विक्रिया नहीं होती है।

टिप्पण - जो वृद्ध मयूर है वह कुमार रूप से विक्रिया करता है, ऐसा लगा लेना चाहिए।

भावार्थ - तिर्यंचों में एकत्व विक्रिया ही होती है पृथक्त्व नहीं। जैसे कोई वृद्ध मयूर, कुमार अवस्था रूप मयूर की ही विक्रिया करे। इससे ऐसा भी ध्वनित होता है कि वह वृद्ध मयूर, कुमार मयूर जैसी एकत्व विक्रिया तो कर सकता है, परन्तु स्वयं हाथी आदि अन्य पशु-पक्षियों रूप विक्रिया नहीं कर सकता।

जिज्ञासा- अन्तर्मुहूर्त की क्या परिभाषा है ?

समाधान- श्री धवला पुस्तक-3, पृष्ठ 67 पर अन्तर्मूहूर्त के संबंध में कहा है कि 48 मिनिट से कम और एक आवली से अधिक को अन्तर्मुहूर्त मानना चाहिए। उद्धरण इस प्रकार है- "एक आवली को ग्रहण करके असंख्यात समयों में से एक आवली होती है, इसलिए उस आवली के असंख्यात समय कर लेने चाहिए। यहाँ मुहूर्त में से एक समय निकाल लेने पर शेष काल के प्रमाण को भिन्न मुहूर्त कहते हैं। उस भिन्न मुहूर्त में से एक समय और निकाल लेने पर शेष काल का प्रमाण अन्तर्मूहूर्त होता है। इस प्रकार उत्तरोत्तर एक-एक समय कम करते हुए उच्छ्वास के उत्पन्न होने तक एक-एक समय निकालते जाना चाहिए। वह सब एक-एक समय कम किया हुआ काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है। इसी प्रकार जब तक आवली उत्पन्न नहीं होती तब तक शेष रहे एक उच्छ्वास में से भी एक-एक समय कम करते जाना चाहिए, ऐसा करते हुए जो आवली उत्पन्न होती है, उसे भी अन्तर्मुहूर्त कहते हैं।"

श्री धवला पुस्तक-3, पृष्ठ 69 में इस प्रकार और भी कहा है-

सामीप्यार्थे वर्तमानान्तः शब्दग्रहणात्। मुहूर्तस्यान्तः अन्तर्मुहूर्तः।

अर्थ - जो मुहूर्त के समीप हो उसे अन्तर्मुहूर्त कहते हैं। इस अन्तर्मुहूर्त का अभिप्राय मुहूर्त से अधिक भी हो सकता है (अर्थात् 48 मिनिट के कुछ अधिक को भी अन्तर्मुहूर्त कहा जा सकता है।)

जिज्ञासा -जब तक उपदेश नहीं मिलेगा तब तक जीवादि तत्त्वों का ज्ञान, श्रद्धान कैसे होगा। अतः निसर्गज सम्यग्दर्शन सिद्ध नहीं होता ?

समाधान - उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में श्री राजवार्तिक कार ने अध्याय -1 सूत्र 3 की टीका में वार्तिक 5 व6 में बहुत सुन्दर निरूपण किया है जिसका हिन्दी अर्थ इस प्रकार है - दोनों ही सम्यग्दर्शनों में (निसर्गज एवं अधिगमज सम्यग्दर्शन में) अंतरंग कारण तो दर्शन मोह का उपशम, क्षय या क्षयोपशम समान है, इसके होने पर जो सम्यग्दर्शन बाह्य उपदेश के बिना प्रकट होता है वह निसर्गज कहलाता है। और जो परोपदेश पूर्वक जीवादिक के ज्ञान में निमित्त होता है, वह अधिगमज कहलाता है, यही इन दोनों में अन्तर है। जैसे लोक में भी शेर, भेड़िया, चीता आदि में क्रूरता, शूरता, आहार आदि की प्राप्ति परोपदेश के बिना स्वभाव से ही देखी जाती है। यह सब कर्मोदय रूप निमित्त से होने के कारण सर्वथा आकस्मिक नहीं है फिर भी परोपदेश की अपेक्षा न होने से नैसर्गिक कहलाती है। उसी प्रकार परोपदेश निरपेक्ष सम्यग्दर्शन में भी निसर्गता स्वीकार की गई है।

श्री श्लोकवार्तिक में इस प्रकार कहा है- निकट सिद्धि वाले भव्य जीव के दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम आदिक अन्तरंग हेतुओं के विद्यमान रहने पर और परोपदेश को छोड़कर शेष, ऋद्धि दर्शन, जिनबिम्ब दर्शन, वेदना आदि बहिरंग कारणों से पैदा हुए तत्वार्थ ज्ञान से उत्पन्न हुआ तत्वार्थ श्रद्धान निसर्गज समझना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए।

प्रश्नकर्त्ता - श्री राजेन्द्र कुमार जैन कोटा

जिज्ञासा - शास्त्रों में कहीं-कहीं पर अरहंत भगवान् को अष्टकर्म से रहित लिखा है। वह किस प्रकार समझना चाहिए?

समाधान - आपके प्रश्न का समाधान श्री बोधपाहुड़ गाथा 29 में इस प्रकार किया है-

दंसण अणंत णाणे मोक्खो णट्ठट्ठकम्मबंधेण।
णिरुवमगुणमारुढो अरहंतो एरिसो होई॥ 29॥

गाथार्थ - जिनके अनन्त दर्शन और अनन्त ज्ञान विद्यमान हैं। आठों कर्मों का बंध नष्ट हो जाने से जिन्हें भाव मोक्ष प्राप्त हुआ है तथा जो अनुपम गुणों को प्राप्त हैं, ऐसे अर्हंत होते हैं।

विशेषार्थ - पदार्थ की सत्ता मात्र का अवलोकन होना दर्शन है और विशेषता के लिए विकल्प सहित जानना ज्ञान कहलाता है। ज्ञानावरण के क्षय से अनन्त ज्ञान और दर्शनावरण के क्षय से अनन्त दर्शन अरहंत भगवान् के प्रकट होते हैं। इन दोनों गुणों के रहते हुए उनके आठों कर्मों का बंध नष्ट हो जाने से भाव मोक्ष होता है।

प्रश्न - मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम् मोहनीय तथा ज्ञानावरण और अन्तराय के क्षय से केवलज्ञान होता है। उमास्वामी के इस वचन से सिद्ध है कि अरहन्त भगवान् के चार कर्म ही नष्ट हुए हैं उन्हें ''नष्टानष्ट कर्म बन्धे'' क्यों कहा जाता है?

उत्तर - आपने ठीक कहा है, परन्तु जिस प्रकार सेनापति के नष्ट हो जाने पर शत्रु समूह के जीवित रहते हुए भी वह मृत के समान जान पड़ता है, उसी प्रकार सब कर्मों के मुख्यभूत मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने पर यद्यपि अरहन्त भगवान् के वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार अधातिया कर्म विद्यमान रहते हैं तथापि नाना प्रकार के फलोदय का अभाव होने से वे नष्ट हो गये, ऐसा कहा जाता है। क्योंकि विकार उत्पन्न होने वाले भाव का अभाव हो जाता है। उपमा रहित अनन्त चतुष्टय रूप गुणों को प्राप्त हुये अरहन्त अष्ट कर्म से रहित कहे जाते हैं। ऊपर कही विशेषताओं से युक्त पुरुष होता है तथा उपचार से उसे मुक्त ही कहते हैं।

जिज्ञासा - उपशम सम्यक्त्व के काल में अनन्तानुबंधी की चार तथा दर्शनमोहनीय की तीन कुल 7 प्रकृतियाँ उदयावली में रहती हैं या नहीं?

समाधान - प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में दर्शनमोहनीय (मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व एवं सम्यक् प्रकृति) तीनों प्रकृतियों का अन्तरकरण उपशम हो जाने से, ये तीनों प्रकृतियाँ उदयावली में नहीं रहती हैं। परन्तु अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार प्रकृतियों का अन्तरकरण उपशम संभव न होने के कारण, इनका उदय तो रहता है परन्तु उदय से एक समय पूर्व स्तिबुक संक्रमण होकर अन्य कषाय रूप उदय निरंतर होता रहता है। श्री लब्धिसार की टीका में पृष्ठ 83 पर श्री पं. रतनचन्द जी मुख्तार ने इस प्रकार लिखा है- ''अनन्तानुबंधी चतुष्क का न तो अन्तर होता है और न ही उपशम होता है। हाँ, परिणामों की विशुद्धता के कारण प्रतिसमय स्तिबुक संक्रमण द्वारा अनन्तानुबन्धी कषाय का अप्रत्याख्यानावरण आदि कषाय रूप परिणमन होकर परमुख उदय होता रहता है (उपशम सम्यक्त्व के काल में)। फिर प्रथमोपशम सम्यक्त्व के काल में अधिक से अधिक 6 आवली तथा कम से कम 1 समय शेष रहने पर परिणाम की विशुद्धि में हानि हो जावे तो अनन्तानुबंधी का स्तिबुक संक्रमण रुक जाता है और अनन्तानुबंधी के परमुख उदय के बजाय स्वमुख उदय आने के कारण प्रथमोपशम सम्यक्त्व की आसादना (विराधना) हो जाती है।''

जिज्ञासा - उपशम श्रेणी चढ़ने के काल में निधत्ति और निकाचित कर्म प्रकृतियों का क्या होता है?

समाधान- श्री लब्धिसार गाथा 226 में उपर्युक्त प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया है-

अणियट्टिस्स य पढमे अण्णट्ठिदिखंडपहुदिमारभइ।
उपसामणा णिधत्ती णिकाचणा तत्थ वोच्छिण्णा॥ 226॥

अर्थ- अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में अपूर्वकरण के अंत समय से और ही प्रमाण रखता हुआ स्थितिखण्ड आदि का प्रारंभ करता है और वहाँ ही समस्त कर्मों की उपशमकरण, निधत्तिकरण और निकाचनकरण की व्युच्छित्ती हो जाती है।

भावार्थ - उपशम श्रेणी चढ़ते हुए अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में ही सभी कर्मों में से जो कर्म पुंज अप्रशस्त उपशामना रूप हैं, जो कर्म पुंज निधत्ति रूप हैं और जो कर्म निकाचित रूप हैं, उन तीनों की व्युच्छित्तिकर वे कर्म पुंज क्रमशः उदीरणा के योग्य, संक्रमण तथा उत्कर्षण, अपकर्षण और उदीरणा के योग्य हो जाते हैं।

यहाँ यह भी जानने योग्य है कि उपशम श्रेणी चढ़ने वाला यही जीव, जब उपशम श्रेणी से उतरता है तब उपरोक्त कर्म प्रकृतियों का क्या होता है? इस संबंध में श्री लब्धिसार गाथा 342 में इस प्रकार कहा है-

उवसामणा णिधत्ती णिकाचणुग्घाडिदाणि तत्थेव।

अर्थ -उपशम श्रेणी चढ़ते समय अनिवृत्तिकरण के प्रथम समय में जिन अप्रशस्त उपशामनाकरण, निधत्तिकरण और निकाचनाकरण इन तीनों की व्युच्छित्ती हो गई थी, वे उतरते समय जब वह जीव अपूर्वकरण में प्रवेश करता है तब उसके प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समय में ही पुनः उदघाटित हो जाने हैं। अर्थात् जिन कर्मों की पहले अप्रशस्त उपशामना की व्युच्छित्ती हो गई थी वे पुनः अप्रशस्त उपशामना रूप हो जाते हैं तथा जिनके निधत्ति और निकाचना की व्युच्छित्ती हुई थी, वे पुनः निधत्ति और निकाचित रूप हो जाते हैं।

प्रश्नकर्त्ता डॉ. अभय दगड़े, कोपरगाँव

जिज्ञासा- क्या चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर महाराज से पहले दिगम्बर निर्ग्रन्थ मुनि परम्परा समाप्त हो गई थी या दिगम्बर मुनि मौजूद थे?

समाधान- यथार्थता तो यह है कि चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर जी महाराज से पहले दिगम्बर जैन साधु बिरले ही होते थे। उनकी संख्या नगण्य होने के कारण जनसामान्य में ऐसा कहा जाता है कि चारित्र चक्रवर्ती आचार्य शांतिसागर महाराज से पहले मुनि परम्परा समाप्त हो चुकी थी। परन्तु श्री स्व. बाबू कामताप्रसाद जी जैन के द्वारा लिखित "दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि" के अध्ययन से निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर से पहले भी निर्ग्रन्थ दिगम्बर जैन मुनि परंपरा मौजूद थी।

१. संवत् 1462 में ग्वालियर में महामुनि श्री गुणकीर्ति जी प्रसिद्ध थे।
2. संवत् 1503 में लखनऊ चौक के जैन मंदिर में दिगम्बराचार्य विमलकीर्ति विराजमान थे।
3. भेदपाद देश में संवत् 1536 में मुनि श्री रामसेन जी के शिष्य मुनि सोमकीर्ति जी विद्यमान थे जिन्होंने यशोधर चरित्र की रचना की थी।
4. संवत् 1575 में जयपुर के पाटौदी मंदिर में श्री चन्द्रमुनि विराजमान थे।
5. संवत् 1578 में कुरावली (मैनपुरी) के मन्दिर में मुनि विशालकीर्ति विराजमान थे।
6. संवत् 1586 में चावलपट्टी (बंगाल) में मुनि ललितकीर्ति विद्यमान थे।
7. संवत् 1605 में मुनि क्षेमकीर्ति महाराज विराजमान थे।
8. संवत् 1611 में दिगम्बराचार्य माणिकचन्द्र देव विराजमान थे।
9. संवत् 1634 में चावलपट्टी (बंगाल) में मुनि बाहुनन्दी विराजमान थे।
10. संवत् 1667 में दिगम्बर मुनि सकलकीर्ति विराजमान थे।
11. संवत् 1680 में दिगम्बर मुनि महेन्द्रसागर जी विराजमान थे।
12. डॉ. वर्नियर के अनुसार शाहजहाँ के काल में प्रचुर संख्या में दिगम्बर साधु मौजूद थे।
13. पदमावत के लेखक मलिक मुहम्मद जायसी के अनुसार शेरशाह के समय में दिगम्बर मुनि विचरण करते थे।
14. संवत् 1719 में अकबराबाद (आगरा) में मुनि वैराग्यसेन मौजूद थे जिन्होंने 148 प्रकृति का चर्चा ग्रन्थ लिखा था।
15. संवत् 1757 में कुण्डलपुर में मुनि श्री गुणसागर तथा मुनि यशःकीर्ति विराजमान थे।
16. संवत् 1783 में मुनि श्री देवेन्द्रकीर्ति जी महाराज ढूंढारी देश में विराजमान थे।
17. संवत् 1799 में मुनि महेन्द्रकीर्ति, मुनि धर्मचन्द्र तथा मुनि श्री भूषण आदि विराजमान थे।
18. 18 वीं शताब्दी में संधि पंडित महामुनि हुए हैं जिन्होंने चिताम्बर में ब्राह्मणों को वाद-विवाद में हराया था।
19. 18 वीं शताब्दी में दिगम्बराचार्य उज्वल कीर्ति तथा महति सागर जी हुए थे, जिनकी समाधि दहीगाँव में हुई थी।
20. संवत् 1870 में ढाका में मुनि नरसिंह तथा इटावा में मुनि विनयसागर जी विराजमान थे।
21. संवत् 1872 में मुनि बाहुबली विराजमान थे जिनके नाम से कुंभोज बाहुबली नाम पड़ा।
22. संवत् 1969 में मुनि जिनप्पास्वामी, मुनि चन्द्रसागर (हूमण जातीय) मुनि सनतसागर, मुनि सिद्धप्पा आदि विराजमान थे।
23. संवत. 1970 में मुनि अनन्तकीर्ति महाराज विराजमान थे जिनकी मुरैना में समाधि हुई थी।
24. सन् 1478 में जिंजी प्रदेश में दिगम्बराचार्य श्रीवीरसेन बहुत प्रसिद्ध हुए हैं।

इसके अलावा और भी अन्य बहुत से दिगम्बर मुनियों के प्रमाण उपर्युक्त पुस्तक से पाठकों को देख लेना चाहिए। बाबू कामताप्रसाद जैन द्वारा लिखित पुस्तक 'दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि' प्रत्येक साधर्मी भाई को पढ़ने योग्य है, अवश्य पढ़ें।

1/205, प्रोफेसर कॉलोनी,
आगरा-282 002

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृतिक उपचार

सर्दी जुकाम

डॉ. वन्दना जैन

यह एक तीव्र रोग है। प्रकृति प्रदत्त दिव्य वरदान स्वरूप है। शरीर शुद्धिकरण की प्रक्रिया में सहयोग देने के लिए यह मित्र की तरह हमें सजग व सावधान करने के लिए आता है। वास्तव में शरीर में सीमा से अधिक संचित विकार को प्रबल जीवकी शक्ति द्वारा तेजी से निकाल बाहर करने की प्रक्रिया ही इस रोग में होती है। अत: जुकाम होने पर किसी अन्य चिकित्सा एवं औषधि द्वारा शरीर के स्वभाविक स्वच्छ एवं स्वस्थ होने के रास्ते में रोड़े न अटकाये, प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा शरीर की स्वाभाविक प्रक्रिया के साथ सहयोग कर सही स्वास्थ्य प्रदान करे।

लक्षण :- सिरदर्द, नाक बहना, कभी-कभी पूरे शरीर में दर्द का बना रहना, धीमा-धीमा बुखार, खाँसी, टाँसिल बढ़ना, सांस लेने में कठिनाई, गुस्सा आना, खाने में अरूची आदि।

कारण:- मौसम परिर्वतन, शरीर में जीवनी शक्ति की कमी, वातानुकूलित कमरों से अचानक गर्मी के वातावरण में आना, पसीने की स्थिति में ठंडे पेय, पेप्सी, कोक अथवा आईसक्रीम का सेवन, कब्ज का रहना, बेमेल भोजन, धूल अथवा परागकणों से इलर्जी, गठिया, यक्ष्मा, सिफलिश आदिरोग, विषम परिस्थितियाँ, जीवाणुओं का संक्रमण।

प्राकृतिक उपचार - दोनों समय हल्के ठंडे पानी से 15-20 मिनिट कटि स्नान लेकर आधा घंटा धीरे-धीरे टहलना। प्रतिदिन गर्म पानी का ऐनिमा, तेल से प्रतिदिन मालिश, पेट की गरम, ठंडी सेंक, मालिश के बाद ठंडी लपेट, धूप स्नान, एक घंटा प्रतिदिन एक दिन के अन्तराल पर गर्म पाद स्नान, एक दिन के अंतराल पर रीढ़ पर गर्म ठंडा सेंक, एक दिन के अंतराल पर वाष्प स्नान। प्रतिदिन नाक में घी की दो बूँदे डालें। पहले कुछ दिन जल नेती फिर सूत्र नेती करें। यूकेलिप्टस अथवा तुलसी के पत्ते डालकर प्रात: और सायं रोजाना 10 मिनिट इलाज के दौरान भाप लें। एक सप्ताह तक रोज सुबह कुंजल और उसके बाद गर्म पानी के गरारे।

योगासन एवं प्राणायाम:- पादहस्तासन, ताडासन, जानुशिरासन, अर्धमत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, पवनमुक्तासन, शलभासन, भुजंगासन, विपरीतकरणी, मत्स्यासन, वक्षस्थल शक्ति विकासक क्रिया, पक्षीआसन, नौकासन, भस्त्रिका, सूर्य भेदी प्राणायाम, भ्रामरी प्राणायाम।

भोजन तालिका : सुविधानुसार निम्न तालिका से भोजन लें।

गर्म पानी तथा नीबू रस, एक-एक कप प्रत्येक घंटे बाद लेते रहें, तीन दिन में जुखाम ठीक हो जाता है।

आहार के तीन भाग रहेंगे-

इलाज के पहले भाग में रसाहार में रहना है, इससे शरीर को पर्याप्त शक्ति मिल जाती है और पाचन क्रिया में न्यूनतम शक्ति खर्च होती है। रसाहार से रक्त में आवश्यक विटामिन एवं अन्य लवण प्राप्त हो जाते हैं। हर तीन घंटे बाद दिन में चार बार जूस लें। दो बार ऋतु के जो ताजे फल एवं सलाद हो सकते हैं उनका मिला-जुला जूस दें- जैसे गाजर, टमाटर, पालक, धनिया (थोडा), शलजम आदि का रस, इसमें अल्प मात्रा में अदरक व नीबू डालें, दो बार यह ग्रीन जूस दें, एक बार नीबू अमृता (गुड़) दें तथा एक बार किसी भी मौसम का जूस दें इस प्रकार दिन में चार बार हो जाता है।

इलाज के दूसरे भाग में :- इस बार जूस, तीन घंटे बाद मौसम के फल, सलाद लेना है, इसके तीन घंटे बाद जूस फिर शाम को सलाद व फल ले सकते हैं, इस प्रक्रिया को पाँच दिन करें।

इलाज के आखिरी या तीसरे भाग में - सर्वप्रथम एक बार ग्रीन जूस (सलाद का) तथा दिन के भोजन में बिना नमक का सूप लें, ध्यान रहे इस सूप को छाने नहीं, साथ ही उबली तरकारी लें। बगैर घी की एक दो रोटी लें एवं मात्रा प्रतिदिन बढ़ाते रहें। बिना नमक की हरी सब्जी, सलाद व अंकुरित अन्न भी लें, सलाद में खीरा, टमाटर, गाजर, बंद गोभी आदि लें।

1. भोजन के चार घंटे बाद जूस लें।
2. सायंकाल दिन के भोजन की मात्रा थोड़ा बदल कर लें। इलाज खत्म करने के एक दिन पहले से थोड़ा नमक डालकर भोजन दें एवं नमक की मात्रा धीरे-धीरे सामान्य पर लायें।
3. इलाज के प्रत्येक भाग को तीन से पाँच दिन तक चलायें।

परहेज - गरिष्ठ भोजन, ठंडा तला, भुना बाजारी भोजन, मिर्च मसाले, नमक, चीनी, माँस, मछली, अंडा, आईसक्रीम अथवा मैदे से बने पदार्थ।

उपरोक्त प्राकृतिक चिकित्सा का उपचार योग किसी अच्छे प्राकृतिक चिकित्सालय जाकर लेना चाहिए। रसोपवास व उपवास भी किसी अच्छे प्राकृतिक चिकित्सक के मार्ग दर्शन में ही करना चाहिए।

भाग्योदय तीर्थ, सागर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाचार

चैतन्यतीर्थ-उदासीन आश्रम-इसरी बाजार

सिद्धक्षेत्र में आयकर करो आत्म कल्याण।
नर पर्याय गवाँय दी तो फिर दुर्लभ जान॥

जिस भूमि से एक भी मुनि मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं, वह भूमि सिद्धक्षेत्र कहलाने लगती है। वहाँ की रज को अपने माथे पर लगाकर भव्य जीव अपने आपको धन्य मानते हैं, यहाँ तक कि सम्यग्दर्शन को भी प्राप्त कर लेते हैं। श्री धवलाजी महाग्रन्थराज की प्रथम पुस्तक में आचार्य श्री वीरसेन स्वामी ने सिद्धक्षेत्रों को क्षेत्रमंगल कहा है, अर्थात् मांगलिक क्षेत्र माना है। अत: जहाँ से असंख्यात मुनियों ने अनन्तकाल के लिये कर्मों से छूटकर अनन्तसुख को प्राप्त किया हो ऐसे गिरिराज सम्मेद शिखरजी की पवित्रता का क्या कहना ?

ऐसे पवित्र शाश्वत तीर्थराज की तलहटी में बसा हुआ श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन शान्ति निकेतन उदासीन आश्रम इसरी बाजार, जहाँ पर न्यायाचार्य, उदारता की मूर्ति श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी ने ध्यान अध्ययन किया और अन्त में समाधि पूर्वक इस नश्वर शरीर का विसर्जन किया तथा जहाँ पर सन् 1983 में युग-श्रेष्ठ महाकवि संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी ने दस माह तक दीर्घकालीन साधना कर द्वादश-विधि तप किया और इसी बीच पाँच ऐलक महाराजों को अर्थात् सुधासागर जी, स्वभाव सागर जी, समता सागर जी, समाधि सागर जी, सरल सागर जी को परम दैगम्बरी दीक्षा प्रदान की थी तथा जहाँ पर क्षुल्लक श्री जिनेन्द्र वर्णी जी की समाधि कराई थी, जिससे अन्वर्थ संज्ञक "शान्ति निकेतन" अत्यन्त शान्तिदायक बना है, जहाँ सूरजमुखी साधकों के निवास स्थान हैं। प्रात: काल पक्षियों के कलरव सुनाई देते हैं, दायीं ओर उपसर्गविजेता विघ्नहर पार्श्वनाथ भगवान् का गगनचुम्बी जिनालय सुशोभित है, बायीं ओर अनादि कालीन अज्ञान तिमिर को हरने वाला सरस्वती भवन अपनी छटा बिखेर रहा है, सामने ही वर्णी द्वय (गणेश प्रसाद जी वर्णी, जिनेन्द्र जी वर्णी) के समाधि स्थल प्रतिपल समाधि की याद दिलाते हैं, सामने ही कुएँ का शीतल जल 'जलगालन' विधि सिखाता है, पूर्व दिशा में गिरिराज पर स्थित पार्श्वप्रभु की टोंक सामायिक बेला में अनन्त सिद्धों का स्मरण कराती है। चारों ओर की हरियाली चौरासी लाख योनियों से भयभीत कर मन को शांति की ओर ले जाती है तथा पृष्ठ भाग में वृक्ष पंक्ति सुशोभित है। ऐसा यह आश्रम वर्षों से भव्यों को साधना के लिये बुला रहा है। इतना तो निश्चित है कि द्रव्य-क्षेत्र काल के अनुसार संसारी प्राणियों के भाव हुआ करते हैं। अत: आत्महित के इच्छुक भाईयों को उत्तम क्षेत्र का चुनाव आवश्यक है। इस चुनाव के लिए पूर्वी भारत में उदासीन आश्रम इसरी बाजार सर्वश्रेष्ठ है।

इस प्रकार के क्षेत्र के अतिरिक्त इस विषम काल में खोटे संस्कारों को तोड़कर सुसंस्कारित होने के लिये सत्संग की बड़ी आवश्यकता है। एतदर्थ साधकों के लिए परम सौभाग्य से स्व. मूर्धन्य विद्वान् पं. प्रवर डॉ. पन्नालाल जी साहित्याचार्य के सुयोग्य शिष्य द्वय सिद्धान्तरत्न व न्यायरत्न से विभूषित बाल ब्र. श्री पवन भैया व श्री कमल भैया आश्रम में दिनांक 4.6.2003 को स्वपरहित के लिये पधार चुके हैं। इस प्रकार क्षेत्र तथा सत्संग का लाभ उठाकर हम भी अपना भला कर सकते हैं। ब्र. द्वय के नेतृत्व में सामूहिक स्वाध्याय से सभी लाभान्वित हो रहे हैं। श्रुत पंचमी पर्व के महान अवसर पर आश्रम में अपरान्ह 2 बजे सरस्वती पूजा, धवला-जयधवला-महाधवला आदि ग्रन्थराजों की पूजा बड़े भक्तिभाव के साथ सम्पन्न हुयी एवं प्रवचन हुए।

अत: जो भाई-बहन वर्तमान में मुनि-आर्यिका बनने में असमर्थ हैं, जिनकी पारिवारिक जिम्मेदारी पूर्ण हो चुकी है तथा जिन्हें इस बहुमूल्य पर्याय का अवशिष्ट जीवन व्यतीत करने के लिए और अर्थ पुरुषार्थ की आवश्यकता नहीं है- उनके लिए धर्म ध्यान पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए परमपावन सिद्ध क्षेत्र सम्मेद शिखरजी के पादमूल में स्थित श्री पार्श्वनाथ दि. जैन शांति निकेतन उदासीन आश्रम, इसरी बाजार पूर्वी भारत में गौरवपूर्ण अद्भुत स्थान है। घर परिवार में रहते हुए परिणामों का निर्मल रहना दुष्कर है। अत: आत्म विकास के लिए अब बचा हुआ जीवन धर्मक्षेत्र में व्यतीत करना लाभ दायक है।

अत: उदासीन आश्रम में आजीवन रहने के उद्देश्य से आगामी 30.11.2003 से 14.12.2003 तक "पंचम आत्म साधना शिक्षण शिविर" का आयोजन किया जा रहा है।

आश्रम में वर्तमान दैनिक चर्या

प्रात: 4 बजे से 4.20 बजे तक	-	सुप्रभात स्तोत्र, आचार्य भक्ति
प्रात: 4.20 से 5.30 तक	-	सामायिक
प्रात: 5.30 से 7.15 तक	-	पूजन
प्रात: 7.30 से 8.30 तक	-	सामूहिक स्वाध्याय
मध्याह्न 12 से 1 बजे तक	-	सामायिक
मध्याह्न 1 से 2 बजे तक	-	स्वकीय अध्ययन
मध्याह्न 2 से 3.30 तक	-	सामूहिक स्वाध्याय
मध्याह्न 3.30 से 4.30 तक	-	स्वकीय अध्ययन
मध्याह्न 5.45 से 6.15 तक	-	देववन्दना, आचार्य भक्ति
सांय 6.15 से 7.30 तक	-	सामायिक
सांय 7.30 से 8.30 तक	-	सामूहिक स्वाध्याय

श्रीमती हीरामणी छाबड़ा
188/1/जी माणिकताल मेन रोड,
कलकत्ता - 700 054

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भव्य मंगल प्रवेश

मुनिश्री 108 सुधासागर जी महाराज ससंघ का आज 19.5.03 को सांगानेर में भव्य मंगल प्रवेश हुआ। जैन समाज के लोगों ने महाराजश्री की जगह-जगह आरती उतारी एवं मंगल गीत गाये। श्री दिगम्बर जैन महिला मंडल की सदस्याएँ एवं समाज की अन्य महिलाएँ मंगलकलश सिर पर धारण किये मुनिश्री की अगुवानी में आगे आगे मंगलगीत गाती हुई बैण्ड बाजों के साथ चल रही थीं। मुनिश्री के स्वागत में मंदिरजी के मार्ग पर जगह-जगह तोरणद्वार लगे थे। मंदिर जी में यह जुलूस एक धर्मसभा में परिवर्तित हो गया जिसमें मुनिश्री का मंगल प्रवचन हुआ।

मुनिश्री ने कहा कि मेरे इष्ट देव सांगानेर वाले बाबा आदिनाथ भगवान् हैं। दुनियाँ में विराजित अन्य भगवान् मेरे आराध्य देव हैं और सांगानेर में विराजित बाबा आदिनाथ मेरे ईष्टदेव हैं। मुनिश्री ने बताया कि कई लोग मुझसे पूछते हैं कि आखिर सांगानेर वाले आदिनाथ जी में ऐसा क्या है अन्य प्रतिमाओं से यह कैसे भिन्न है। इस पर मुनिश्री ने कहा कि राजस्थान के गौरवपूर्ण इतिहास में सांगानेर की प्राचीनता और इस मंदिर की वैभवता स्वर्ण अक्षरों में अंकित है। इस चतुर्थकालीन प्रतिमा को असंख्य देवीदेवताओं ने नमस्कार किया है, अत: इसमें अतिशयता अधिक है। यह प्रतिमा पूरे भारतवर्ष में सर्वाधिक प्राचीन है ये इतिहासातीत है। अन्य मूर्तियों के निर्माण या स्थापना का इतिहास मिल जाता है किन्तु ये तो कालगणना से भी परे है। प्राचीनता के अतिरिक्त कई विशेषाएँ हैं इस प्रतिमा में।

मुनिश्री ने बताया कि अनिष्टों के निवारण, इष्ट की उपलब्धि व परम सिद्धि की प्राप्ति के लिये सांगानेर वाले बाबा की शरण में आ जाओ। में स्वयं दुनियाँ में तो भक्तों के वश में रहता हूँ लेकिन सांगानेर में आने के बाद मैं बाबा के वश में हो जाता हूँ। यहाँ में आशीर्वाद देने नहीं बल्कि लेने आया हूँ। मैं भी अपने आत्मबलरूपी बेट्री को चार्ज करने आया हूँ। यहाँ भगवान् के दरवार में कोई बड़ा छोटा नहीं अपितु सभी समान होते हैं। आज मेरी भी भावना गन्धोदक लेने की है गन्धोदक देने की नहीं।

मन्दिरजी के मुख्य द्वार पर कमेटी के पदाधिकारियों एवं अन्य सदस्यों ने मुनियों का पादप्रक्षालन किया और आरती उतारी। धर्मसभा में आदिनाथ के चित्र के समक्ष श्रीमान गणेशकुमार जी राणा ने दीपप्रज्ज्वलन कर कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। धर्मसभा मंच का संचालन जाने माने कवि श्री राजमलजी बेगस्या ने किया।

निर्मल कासलीवाल

राजस्थान के राज्यपाल सपरिवार सांगानेर में मुनि श्री सुधासागर जी के दर्शनार्थ पहुँचे

आज दिनांक 19.5.2003 सोमवार को सायंकाल 6.00 बजे राजस्थान के महामहिम राज्यपाल निर्मलचन्द्रजी जैन ने श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी सांगानेर स्थित बाबा आदिनाथ जी के दर्शन किये और सपरिवार आरती की। राज्यपाल ने आचार्य विद्यासागर जी महारज के सुयोग्य शिष्य श्री सुधासागर जी महाराज के दर्शन किये एवं श्रीफल भेंट किया। राज्यपाल के साथ उनकी धर्मपत्नि, पुत्र, पुत्रवधु, पुत्री एवं दामाद भी साथ थे। मंदिर जी पहुंचने पर राज्यपाल को क्षेत्र के मानवमंत्री निर्मलकुमार जी कासलीवाल ने तिलक लगाया एवं अध्यक्ष श्री भंवरलाल जी सौगाणी ने माल्यार्पण किया। राज्यपाल मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के साथ लगभग एक घण्टे रहे। इस दौरान उन्होने धर्मचर्चा की तथा मुनिश्री से राजस्थान की सुख समृद्धि का आशीर्वाद मांगा। मुनिश्री से निवेदन किया कि राजस्थान की जनता कई वर्षों से सूखे से पीड़ित है, महाराजश्री ऐसा आशीर्वाद प्रदान कीजिए कि अकाल सुकाल में बदल जाये इस वर्ष अच्छी बरसात हो। मुनिश्री ने आशीर्वाद देते हुए कहा कि जब राज्यपाल पद पर शुद्ध आचरण वाले व्यक्ति आ गये तो प्रकृति अपना रूप बदल देगी। राजस्थान की जनता के प्रति आपकी भावना मानवता एवं महानता का प्रदर्शन करती है। आपकी भावना नियमों से फलीभूत हो ऐसा हमारा आशीर्वाद है।

महामहिम ने मुनिश्री से जयपुर में चातुर्मास करने हेतु श्रीफल भेंट कर निवेदन किया। मुनिश्री ने कहा कि जहाँ आचार्यश्री का आशीर्वाद है वहीं हम चातुर्मास करते हैं। महामहिम ने कहा कि हमारी भावना है कि जब हम राजस्थान के राज्यपाल बनकर आये हैं तो आचार्यश्री का ससंघ एवं आपका एक साथ चातुर्मास हो। मुनिश्री के मुख से मंदिर के अतिशय एवं महिमा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न होते हुये महामहिम ने कहा कि मुझे तो स्वत: ही ये भावना आई कि शपथ लेने से पूर्व सांगानेर वाले बाबा आदिनाथ जी के दर्शन करूँ। मुझे दर्शन करने के पश्चात् ऐसा आभास हुआ कि प्रतिमा महाअतिशयकारी है। मेरी इच्छा थी कि जयपुर में प्रवेश करते ही आपकी चरण वन्दना करके आशीर्वाद प्राप्त करूँ। परन्तु आपका विहार कालोनियाँ में चल रहा था, समयाभाव के कारण अवसर नहीं मिला। आज ये सुयोग्य अवसर मिला है कि आपके निमित्त से सांगानेर वाले बाबा के पुन: दर्शन हो गये हैं। इस अवसर पर प्रबन्ध कारिणी कमेटी के सभी सदस्यों के अतिरिक्त गणमान्य लोगों में मंदिरजी के संरक्षक श्री गणेश जी राणा, निहालचन्द जी पहाड़िया, समाचार जगत के सम्पादक राजेन्द्र के. गौधा, प्रदीप जी लुहाडिया, श्री प्रेमचन्दजी कोठ्यारी उपस्थित थे।

निर्मल कासलीवाल
मानद मंत्री

डॉ. विक्रान्त जैन अमेरिका में सम्मानित होंगे

अमेरिका की इन्क्वा संस्था की हर चार वर्ष वाद एक कांफ्रेन्स होती है जिनमें सारे विश्व में चार वर्षों में किये गये श्रेष्ठ कार्य के लिए दस वैज्ञानिकों को पुरस्कृत किया जाता है। इस वर्ष यह चौदहवीं कान्फ्रेन्स डीजर्ट रिसर्च इन्स्टीट्यूट रैनो नरोडा अमेरिका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में 23 जुलाई से आरम्भ हो रही है। इस वर्ष जिन दस वैज्ञानिक का चयन किया गया है उसमें भारत के तीन वैज्ञानिक है। जिनमें एक मैनपुरी नगर में जन्मे डॉ. विक्रान्त जैन भी हैं। बिसातखाना मैनपुरी के डॉ. रमेश चन्द्र जैन (सुपुत्र श्री अशर्फीलाल जैन)के सुपुत्र डॉ. **विक्रान्त जैन इस पुरस्कार को प्राप्त करने एवं अपना रिसर्च पेपर प्रस्तुत करने हेतु 21 जुलाई को अमेरिका प्रस्थान कर रहे हैं।**

रुड़की इंजीनियरिंग कॉलेज से एम.टेक तथा आई.आई.टी. कानपुर से पी.एच.डी. कर चुके डॉ. जैन इससे पूर्व वर्ष 2001 में भी एक अमेरिकी पुरुस्कार से सम्मानित हो चुके हैं। डॉ. विक्रान्त जैन को सन् 2001 का एम.टेक/पी.एच.डी. का सर्वश्रेष्ठ छात्र चयन होने पर डॉ. शंकर दयाल शर्मा स्वर्ण पदक पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया था। उल्लेखनीय है कि डॉ. विक्रान्त जैन का विवाह अभी हाल ही में नगर के प्रमुख चिकित्सक व जैन धर्म के विद्वान डॉ. सुशील जैन की सुपुत्री श्रद्धा जैन के साथ सम्पन्न हुआ है। समाज, नगर व देश को इस युवा वैज्ञानिक से भविष्य में बहुत आशायें हैं। पं. शिव चरण लाल जैन, डॉ. सुशील जैन, डॉ. सौरभ जैन, प्रशान्त जैन, वीरेन्द्र जैन, अवनीन्द्र जैन, विजय जैन, अरुण कुमार, आनन्द प्रकाश आदि अनेकों लोगों ने डॉ. विक्रान्त की इस सफलता पर हार्दिक बधाई देते हुए उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना की है।

डॉ. सुनील जैन

वाग्भारती पुरस्कार की घोषणा

वाग्भारती पुरस्कार की घोषणा कर दी गयी है। वर्ष 2002 के लिए यह पं. सुदर्शन जी जैन पिंडरई, मंडला (म.प्र.) को तथा वर्ष 2003 के लिए यह पं. पंकज कुमार जैन शास्त्री 'ललित' रांची (झारखण्ड) को प्रदान किया जायेगा।

वाग्भारती ट्रस्ट के सचिव डॉ. सौरभ जैन ने बताया कि यह पुरस्कार 13 जुलाई 2003 को छत्तीसगढ़ की राजधानी रायपुर में आचार्य श्री पुष्पदंत सागर जी महाराज के सुयोग्य शिष्य मुनिश्री प्रज्ञासागर जी महाराज के ससंघ सान्निध्य में प्रदान किया जायेगा। डॉ. सौरभ जैन ने कहा कि इस पुरस्कार की स्थापना जैन धर्म के युवा विद्वानों को प्रोत्साहित करने की भावना से नगर के प्रमुख चिकित्सक व जैन धर्म के ओजस्वी वक्ता डॉ. सुशील जैन ने की है। वर्ष 1998 में यह शैलेन्द्र जैन, बीना,वर्ष 1999 में सुरेन्द्र भारती, बुरहानपुर, वर्ष 2000 में डॉ. श्रीमती उज्ज्वला, औरगांबाद व वर्ष 2001 में पं. पवन कुमार शास्त्री, मुरैना को प्रदान किया गया था। पुरस्कार में 11000/- की राशि के साथ ही प्रतीक चिन्ह, प्रशस्ति-पत्र आदि भेंट दिये जाते हैं। सारे देश के जैन समाज ने इस हेतु डॉ. जैन का आभार व्यक्त किया है।

डॉ. सौरभ जैन

म.प्र. में जैन समुदाय के लिए विशेष छूट

सतना। म.प्र. सरकर द्वारा पिछले वर्ष जैन समाज को अल्प संख्यक घोषित कर दिये जाने से मिलने वाले लाभों में एक और लाभ की वृद्धि हाल ही में हुई है। म.प्र. शासन द्वारा 30 अप्रेल 2003 को जारी अधिसूचना के अनुसार यदि अल्पसंख्यक समुदाय का कोई व्यक्ति शासन की विभिन्न योजनाओं के तहत् बैंकों/वित्तीय संस्थाओं से ऋण लेकर कोई वाहन खरीदता है तो उसे उक्त वाहन पर पंजीयन तिथि से चार वर्ष तक मोटर यान कर में छूट मिलेगी। दिनांक 30 अप्रेल 2003 के म.प्र. के राज पत्र में प्रकाशित अधिसूचना इस प्रकार है-

परिवहन विभाग
मंत्रालय, वल्लभ भवन, भोपाल
भोपाल, दिनांक 30 अप्रेल 2003

क्रं. एफ. 22-254-2001- आठ-राज्य शासन द्वारा विभागीय अधिसूचना क्रमांक एफ-4-6-96 आठ, दिनांक 15 सितम्बर 1998 में निम्नानुसार आंशिक संशोधन किया जाता है-

अनुसूचित जाति/जनजाति/ अन्य पिछड़ा वर्ग तथा अल्पसंख्यक समुदाय के हितग्राहियों को विभिन्न योजनाओं के अधीन बैंकों/वित्तीय संस्थाओं जिनका उल्लेख विभागीय अधिसूचना दिनांक 15 सितम्बर, 1998 में किया गया है, के अधीन प्रदाय किये गये वाहनों को मोटरयान कर के भुगतान से 2 वर्ष की पूर्ण छूट के स्थान पर वाहन के पंजीयन के दिनांक से 4 वर्ष तक मध्यप्रदेश मोटरयान कराधान अधिनियम, 1991 की धारा 3 के अधीन देय कर की राशि में 50 प्रतिशत की छूट एतद् द्वारा प्रदान की जाती है तथा इन वाहनों को मध्यप्रदेश मोटर यान कराधान अधिनियम 1991 की अनुसूची के मद चार के उप मद (ड़) के अधीन देय मोटर यान कर के संदाय से पंजीयन तिथि से चार वर्ष हेतु पूर्णतः मुक्त रखा जाता है, यह संशोधन उन वाहनों पर लागू होगा जो इस अधिसूचना के राज पत्र में प्रकाशन के उपरांत पंजीकृत होंगे।

म.प्र. के राज्यपाल के नाम से तथा आदेशानुसार,
सी.पी. अरोरा, सचिव

म.प्र. के निवासी जैन बंधु इस योजना का लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

सुधीर जैन
युनिवर्सल केबिल्स लिमिटेड, सतना

अरुण जैन म.प्र. अल्पसंख्यक आयोग में सदस्य मनोनीत

जबलपुर। स्वतंत्रता संग्राम सेनानी एवं जबलपुर नगर के पूर्व महापौर स्व. मुलायमचंद जैन के ज्येष्ठ पुत्र युवा उद्यमी तथा महाकौशल चेम्बर ऑफ कामर्स एवं इंडस्ट्री के सचिव श्री अरुण जैन को उनकी सामाजिक, व्यापारिक एवं राजनैतिक सेवाओं का मूल्यांकन करते हुये म.प्र. के मुख्यमंत्री श्री दिग्विजय सिंह जी ने म.प्र. अल्पसंख्यक आयोग का सदस्य मनोनीत किया है।

भवदीय
सुबोध जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बोध कथा

घर में भरत वैरागी

किसी नगर में दो सहेलियाँ रहती थीं। उनके नाम थे क्रमशः मंजू और संजू। एक दिन दोनों वैराग्य की चर्चा करने लगीं। मंजू ने कहा-बहिन संजू ! अब तो सभी के प्रति ममत्वबुद्धि को छोड़कर आत्मा समत्वबुद्धि में लीन होना चाह रही है। संजू ने कहा- यह तो बहुत अच्छा है। अच्छे विचार हैं आपके। आत्मोन्नति के लिए प्रेरणादायी हैं। भारतीय संस्कृति आज जीवित है तो आत्मोन्नति की घटनाओं से ही जीवित है, धन सम्पदा के कारण नहीं। ज्ञान विज्ञान के कारण नहीं बल्कि त्याग और तपस्या के कारण ही भारत भूमि महान् है।

यह सुनकर मंजू ने कहा - बहिन संजू! क्या तुम किसी ऐसे व्यक्ति को जानती हो जिसने घर में रहकर अद्भुत त्याग किया हो। संजू ने कहा-बहिन जानती हूँ। इस देश में ऐसे महान् व्यक्तित्व के धनी थे भरत। यहाँ भरत से तात्पर्य मेरा उन भरत से नहीं है जिन आदिनाथ भगवान् के पुत्र भरत चक्रवर्ती के नाम पर यह देश 'भारत' कहलाता है।

मंजू ने कहा-बहिन ! चक्रवर्ती भरत की संसार में ख्याति सुनी जाती है कि 'भरत घर में वैरागी' मैं गेहियों में अब तक उन्हें ही महान् त्यागी, वैरागी मानती आ रही हूँ। यह सुनकर संजू ने कहा- बहिन मंजू। मुझे तो लगता है कि वैराग्य के आदर्श गेही पात्र यदि कोई रहे हैं तो वे थे रामचन्द्र के छोटे भ्राता भरत।

मंजू ने कहा - बहिन ! उनके संबंध में आप क्या जानती हो मुझे भी बताइए। संजू ने कहा - सुनो बहिन ध्यान से। किसी समय अयोध्या में राजा दशरथ राज्य करते थे। इनकी चार रानियाँ थीं अपराजिता, सुमित्रा, केकया और सुप्रजा। रानी अपराजिता (कौशल्या) से पदम (राम), सुमित्रा से लक्ष्मण, केकया से भरत और सुप्रजा से उत्पन्न शत्रुघ्न ये चार उनके पुत्र थे। अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनकर राजा दशरथ जब विरक्त हो गये तो पिता की विरक्ति से भरत भी विरक्त हो गये थे। भरत घर से न जा सके इसके लिए केकया ने दशरथ से भरत के लिए अयोध्या का राज्य माँगा और राम को चौदह वर्ष का बनवास। दशरथ ने दोनों बातें स्वीकार की थीं।

बहिन! भरत को सिंहासन की भूख न थी। उन्हें तो वैराग्य की भूख थी। उन्हें भवन नहीं वन चाहिए था। माँ के कहने पर उन्हें यद्यपि राज्य मिल गया था परन्तु उन्होंने राज्य करने के लिए बार-बार अग्रज राम से आग्रह किया था! इस पर राम ने कहा था कि "भइया मुझे पिताजी की आज्ञा है वन जाने के लिए और आपको पिताजी की आज्ञा से सिंहासन पर बैठना है। तुम राज्य मुझे देना चाहते हो तो ठीक है। मैं तुम्हारा बड़ा भाई वह राज्य तुम्हें सौंपना चाहता हूँ।"

मंजू ने कहा फिर क्या हुआ बहिन ? भरत ने क्या किया? क्या वे राज्य करने लगे? संजू ने कहा- बहिन ! भरत करते भी तो क्या? उन्हें एक तरफ पिता की आज्ञा और ज्येष्ठ भ्राता जो पिता तुल्य है उनकी आज्ञा का निर्वहन करना था, दूसरी ओर भीतर मन में उठती वैराग्य की भावना, मुनि बनने की प्यास भी उन्हें सता रही थी। परीक्षा की घड़ी थी वह उनकी। वैराग्य के आगे वे नत हो गये। उन्हें कहना पड़ा कि भइया जैसी आपकी आज्ञा। मैं सब मंजूर करता हूँ।

मंजू ने कहा बहिन ! फिर तो भरत राज्य पाकर बहुत प्रसन्न हुए होंगे। संजू ने कहा नहीं बहिन, नहीं। यह तो उनकी विवशता थी। जानती हो राम से उन्होंने और क्या कहा था? उन्होंने कहा था- आपका कार्य अवश्य करूँगा। आपका जैसा निर्देशन मिलेगा वैसा ही करूँगा पर मैं आपके चरणचिन्ह सिंहासन पर रखना चाहता हूँ।

इससे बहिन समझो कि वे कितने बड़े त्यागी थे। उनकी राजा बनने की इच्छा नहीं थी, उन्हें राजा बनना पड़ा था। यही कारण है कि उन्होंने सिंहासन के ऊपर चरण चिन्ह रखे थे। उनको तिलक लगाया था और उनकी चरण रज लगायी थी अपने माथे पर तथा प्रजा का संरक्षण किया था, बड़े भाई के वन से लौटने तक।

वे घर में रहे, राज्य भी किया पर वैराग्य भाव ज्यों का त्यों बना रहा। भोगों से अरति ही रही। राज काज मात्र करते रहे। उन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम राम की शान को, राजा दशरथ के वंश की और माता की कोख को भी सुशोभित किया। राज्य सम्पदा का लोभ उन्हें छू भी न सका। वे तो क्षत्रिय थे क्षत्रिय कभी पैसे से भूखे नहीं रहते। नीति-न्याय, भक्ति, विनय और वैराग्य को एक साथ भरत के जीवन में ही देखा जा सकता है। घर में रहकर भी भरत का त्याग मय आचरण आदर्श रहा। 'घर में भरत वैराग्यी' यदि इन्हें भी कहा जावे तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

आशय यह है कि ममत्वबुद्धि को छोड़कर समत्व बुद्धि पूर्वक घर में रहकर भी आत्मोन्नति की ओर मुख मोड़ा जा सकता है और शिव पथ से नाता जोड़ा जा सकता है।

'विद्या-कथा कुञ्ज'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि.नं. UP/HIN/29933/24/1/2001-TC डाक पंजीयन क्र.-म.प्र./भोपाल /588/2003

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-I, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org